UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182646

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—881—5-8-74—15,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.09 M67R Accession No. P.G.H5472

Author मिश्र, भगीरथ संपा.

Title रीतिकाव्य नवनीत

This book should be returned on or before the date last marked below.

रीतिकाव्य नवनीत

सम्पादक
डॉ० भगीरथ मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर

ग्रन्थम
रामबाग, कानपुर-१२

मूल्य
१२.००

पुस्तक
● गीतिकाव्य नवनीत
संपादक
● डॉ० भगीरथ मिश्र
प्रकाशक
● ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर—१२
मुद्रक
● आराधना प्रेस, कानपुर—१२

अनुक्रम

● हिन्दी रीतिकाव्य : मूल्यांकन ९-३७

नामकरण ९

रीतियुगीन साहित्य की विविधरूपता १३

रीतियुगीन वीरकाव्य १४

रीतियुगीन संतकाव्य १७

रीतियुगीन प्रेमाख्यानक काव्य १८

रीतियुगीन कृष्ण भक्ति काव्य २०

रीतियुगीन राम भक्ति काव्य २२

रीतियुगीन नीतिकाव्य २३

रीतियुगीन हास्य-व्यंग्य-विनोदकाव्य २५

रीति-शृंगार प्रवाह २९

● पुनर्मूल्यांकन ३७-५०

● कवि-परिचय ५१

आचार्य केशवदास ५१

सेनापति ५५

बिहारी ५९

कविवर मतिराम ६३

महाकवि भूषण ६९

देवदत्त (देवकवि) ७४

पद्माकर ७७

घनानंद ८०

द्विजदेव ८४

● काव्य नवनीत १-१०४

केशवदास २
सेनापति २१
बिहारी ३१
मतिराम ३९
भूषण ४७
देव ५७
पद्माकर ७१
घनानंद ८१
द्विजदेव ९१

हिन्दी रीतिकाव्य : मूल्यांकन

नामकरण

हमारा हिन्दी साहित्य काल की दृष्टि से तीन कालों में विभक्त है—१. प्राचीन काल, २. मध्यकाल और ३ आधुनिक काल। इनमे से प्रत्येक काल को अलग-अलग युगों मे विभाजित किया जा सकता है और इन युगों और कालों के साहित्य को विभिन्न धाराओं या प्रवृत्तियो में। साहित्य की अनेक धारायें और प्रवृत्तियाँ अपने कालखंड या युग-विशेष मे सीमित न रहकर अन्य कालों और युगों में भी प्रवहमान् होती रहती है। ऐसी दशा में प्रवृत्तियों के आधार पर कालों और युगों का विभाजन नही किया जा सकता, क्योंकि ऐसा विभाजन सत्य और वैज्ञानिक नही होता। हम देखते है कि हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत वीर, भक्ति, शृगार जैसी काव्य-धाराये किसी भी कालखंड या युग में समाप्त नही होती। अतः युग-विभाजन किस के आधार पर किया जाये, यह एक समस्या हो जाती है।

साहित्य को तीन कालखडो मे विभाजित करना उतना कठिन नही है, क्योंकि जहां पर हम भाषा या भावप्रवाह मे महत्वपूर्ण मोड़ देखते है उनको ध्यान में रखते हुए प्राचीन, मध्य और आधुनिक कालो मे विभाजित किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास सामान्यतः लगभग एक सहस्र वर्षो का इतिहास है जो सन् १००० वि० से आज तक विस्तृत है। प्राचीन काल इसके उद्भव का काल है जिसे हम सन् १००० से १४०० वि० तक का काल मान सकते है। मध्यकाल इसके विकास का काल है जो सन् १४०० से १९०० वि० तक विस्तृत है और आधुनिक काल विस्तार का काल है जो १९०० वि० के पश्चात् चल रहा है। आधुनिककालीन विशाल हिन्दी-साहित्य का सृजन उसके १०० वर्षो की ही उपलब्धि है। इस प्रकार उद्भव-काल, विकास-काल और विस्तार-काल के रूप में हम प्राचीन, मध्य और आधुनिक कालो की देख सकते है।

अब आता है इन कालो के अन्तर्गत युग-विभाजन का प्रश्न। यद्यपि यह

एक जटिल कार्य है फिर भी मोटे तौर पर हम युग-विभाजन का आधार उस युग की व्यापक एवं मुखर साहित्य-चेतना को मान सकते है । साहित्य-चेतना से मेरा अभिप्राय वर्ण्य विषय और अभिव्यक्ति दोनों से ही है । ऐसी दशा में प्राचीनकाल या आदिकाल या उद्भव काल को हम कई युगों में बाँट सकते है जिसका मुख्य आधार युगीन चेतना और उसका प्रभाव है । इस दृष्टि से हम साधना-युग और वीरगाथा-युग—ये दो नाम इस काव्य को दे सकते है । साधना-युग संवत् १००० से १२५० और वीरगाथा युग संवत् १२५० से १४०० तक माना जा सकता है । साधना–युग के अन्तर्गत रचा गया साहित्य सिद्धों, नाथों और जैनों का आध्यात्मिक साधना एवं धर्मोपदेश सम्बन्धी साहित्य आता है । वीरगाथा युग मे चारण साहित्य जिस के अन्तर्गत किसी वीर को काव्य का नायक बनाकर उसकी वीरता और संयोग-वियोग का वर्णन प्रमुखतया किया गया है । इसके अतिरिक्त इस युग मे भक्ति, प्रेम, शृंगार, नीति आदि की रचनायें भी फुटकल रूप में मिलती है जो मुख्य चेतना के रूप में नही है ।

मध्यकाल के युग अधिक स्पष्ट है । ये युग है भक्तियुग एवं रीति-शृंगार युग । मध्यकाल का भक्तियुग समसामयिक भक्ति सम्बन्धी चेतना के आधार पर किया गया युगखंड है । इस युग में चतुस्सप्रदाय अथवा पंचभक्ति संप्रदायों के भक्ति दर्शनों के आधार पर प्रतिष्ठित भक्ति की भावना से हिन्दी-साहित्य ओत-प्रोत है । यह पूर्वकालीन आध्यात्मिक साधना से भिन्न चेतना है, क्यों इसमें अन्य सभी साधनोपायों की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है और भक्तिभावना ही काव्य को सार्थक बनाने वाली भावना स्वीकार की गयी है । तुलसी का मत है :—

जप पूजा, उपवास दान मख जो जेहि रुचै करो सो ।
पायेहि पै जानिये करम फल मरि मरि वेद परोसो ।
काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरो सो ।
विगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम धरो सो ।
बहु मुनि मत बहु पन्थ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहि लगत राजडगरो सो ।

और भी: **भगत हेतु विधि भवन विहाई । सुमिरत सारद आवत धाई ।**

रामचरित सर बिनु अन्हवाये । सो श्रम जाइ न कोटि उपाये ।
कवि कोविद अस हृदय विचारी । गावहिं हरिजस कलिमल हारी ।

इस प्रकार रामानंद का विशिष्टाद्वैत, वल्लभ का शुद्धाद्वैत, माधव का द्वैत, निम्बार्क का द्वैताद्वैत चैतन्य का भेदाभेद भक्तियुग में राजमार्ग के समान सर्व मान्य पथ स्वीकृत हो चुका था और साहित्य भी भक्ति भाव मे व्यक्त हो कर ही सम्मान पाता था । अत. उसे भक्तियुग कहना चाहिए ।

मध्यकाल के दूसरे युग के सम्बन्ध में थोड़ा अधिक मत वैषम्य है । कोई उसे कलाकाल, कोई अलंकृतकाल, कोई शृगारकाल, और कोई रीतिकाल कहने के पक्ष में है । परन्तु यदि हम अपनी कसौटी अर्थात् साहित्यिक चेतना की मुखरता के प्रभाव की दृष्टि से देखे, तो इसे रीतियुग या अधिक से अधिक रीति-शृगार युग ही कहना चाहिए ।

वीर, भक्ति आदि भावनाओ के समान ही शृगार की भावना भी हमारे अतस का एक प्रमुख अग है । यह एक ऐसी मनःस्थिति है जहाँ हमारी वृत्ति विशेष रमती है । मध्यकाल के दूसरे चरण में साहित्य का जो भी स्वरूप उभर कर आया उसमे शृगार का ही अधिकाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है । अतएव इसे शृगारयुग कहना तर्कसम्मत प्रतीत होने लगता है ।

परन्तु उस समय की मुख्य साहित्य-चेतना जो इससे भी अधिक व्यापक और गहरे रूप मे दिखाई देती है, वह है पद्धतिपरकता । एक साँचे या पैटर्न को लेकर काव्य लिखना । शास्त्रीय विधि या पद्धति का आधार बनाकर लिखने की चेतना इस युग मे अधिक समायी हुई दिखाई देती है । यदि हम इस युग के समग्र साहित्य को देखते है, तो इसमें भक्ति साहित्य, वीर साहित्य, नीति और फुटकल साहित्य शृंगार से कम नही लिखा गया । सभी पूर्ववर्ती धाराओं का विकास इस युग में मिलता है । इसके अतिरिक्त शृंगार, पूर्ववर्ती भक्तियुग के सूर, जायसी, विद्यापति, नददास, गंग, केशव आदि की रचनाओं मे इस युग से भी अधिक मिलता है । दूसरे इस युग के शृंगार को हम कालिदास या विद्यापति जैसे कवियो के शृगार से भिन्न पाते है, वह शृंगार एक पद्धति का अनुसरण करता दिखाई देता है । इसके अन्तर्गत, आलंबन, उद्दीपन, नायकनायिका, ऋतुवर्णन, नखशिख, भाव, अनुभाव, हाव, सचारी, चेष्टा, सखी, दूती आदि के रूप में शृगार-वर्णन पद्धति को जो काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में

मिलती है, सामने रखकर शृंगार वर्णन किया गया है। इस युग की यह पद्धति-परकता ही मुख्य साहित्य चेतना है, शृंगार वर्णन की प्रवृत्ति इसी में ढली हुई है।

वर्णन की शास्त्रीय परम्परा का ध्यान ही हमें इस काल के ग्रंथों में अधिक मुखर दिखलाई देता है। फलतः हमें शिवराज भूषण, रामचन्द्र भूषण, आलीजाह प्रकाश, रावणेश्वर काव्यतरु, जगत विनोद जैसे ग्रन्थ मिलते हैं जिनके अन्तर्गत वीर, भक्ति, शृंगार आदि के वर्णन प्रचुर मात्रा में है, पर ढाँचा है शास्त्रीय।" अतः मेरी दृष्टि में इसे रीतियुग ही कहना अधिक समीचीन है। अधिक से अधिक हम इसे रीतिशृंगार युग कह सकते हैं, क्योंकि रीतिपरकता के पश्चात् दूसरी चेतना शृंगार की ही है जो प्रबलता ग्रहण किये है। कलाकाल या अलंकृतकाल कहना भी एकांगी है, क्योंकि कला या सजावट की चेतना अथवा अलंकरण की चेतना भी किसी पद्धति या शास्त्र का अनुसरण करती है और रीतिचेतना में वह भी समाविष्ट है, क्योंकि इसके भीतर, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, रस आदि सभी कला या अलंकार के सिद्धान्त आ जाते हैं।

इस काल-विभाजन का प्रसंग पूरा करने के लिए आधुनिक या अर्वाचीन काल को ले लेना भी सार्गल होगा, अनर्गल नहीं। आधुनिक काल के युगों के नामकरण के सम्बन्ध में प्रायः यह कहा जाता है कि अन्य युगों के नाम प्रवृत्ति के आधार पर दिये जाते हैं, पर आधुनिक युग में कभी-कभी व्यक्तियों का और कभी-कभी प्रवृत्तियों का उल्लेख होता है। यथा-भारतेन्दुयुग, द्विवेदीयुग, छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद आदि। युग-नाम-निर्धारण सम्बन्धी यह अनेक रूपता कैसी ? मेरे विचार से अर्वाचीन काल का विभाजन भी साहित्य की प्रमुख चेतना के आधार पर ही होना चाहिए। हम उन्हें राष्ट्रीयता युग, स्वच्छन्दतावादी (छायावाद युग) और यथार्थवादी युग कह सकते हैं। भारतेन्दु और द्विवेदी युग भी छायावाद के पूर्व राष्ट्रीयता का युग था। इस समय किसी भी रचना का मूल्य राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने में ही आँका जाता था। इस युग की अधिकांश रचनाओं में यही स्वर प्रधान है। छायावादी युग एक प्रकार का लौकिक और आध्यात्मिक रोमांस का युग है। इस युग की प्रमुख चेतना स्वच्छन्दतावादी या रोमांटिक है और हम उत्कृष्ट रचनाओं में प्रेम और रूप

के प्रति स्वच्छन्द मुग्धता की प्रवृत्ति देखते है । इसी का अवशेष या अधिक स्फुट रूप हालावाद, प्रेमवाद आदि के रूप में कवियों की स्वच्छन्दता, मौज मस्ती तथा स्थूल विलास-वासना को रचनाओं में देखा जा सकता है । शृंगार और प्रेम की ये रचनाएँ भी रीतिकाव्य से भिन्न प्रवृत्ति की हैं । उसके बाद जिसे हम प्रगति, प्रयोगवादी युग के रूप में पुकारते है, वह मूलतः यथार्थवादी युग है । कवि यथार्थ का खुला चित्रण करना चाहता है । उसे कोरे आदर्श या रोमास से घृणा है । वह प्रेम का भी यथार्थ रूप ही प्रस्तुत करना चाहता है । कल, कारखानों के यांत्रिक वातावरण, पीड़ितों, दलितों के मर्मस्पर्शी स्वर, दफ्तर-घर आदि का देखा और अनुभूत रूप जो आज की उत्तर छायावादी युग की कविताओं में मिलता है, वह यथार्थ के प्रति आग्रह की मुख्य चेतना को प्रकट करने वाला है । अतः इसे यथार्थवादी युग कहना चाहिये । इसी के अन रूप इसमें व्यग्ययुक्त तथा घिनौना, कभी सुरुचि को चुनौती देने वाला काव्य भी मिलता है, और कभी-कभी जीवन के सुन्दर सुरुचिपूर्ण, रमणीय रूप का बड़ा मोहक, हृदयस्पर्शी उद्‌घाटन भी । यथार्थवाद इस युग में खूब फूलता-फलता नजर आ रहा है । अतएव जहाँ तक नामकरण का प्रश्न है, जैसा ऊपर कहा जा चुका है इसे रीतियुग या रीतिशृंगार युग कहना ही अधिक संगत है ।

रीतियगीन साहित्य की विविधरूपता

वर्ण्य विषय की दृष्टि से कतिपय समालोचको एवं इतिहासकारो की यह धारणा कि इस रीतियुग में केवल विलासप्रधान शृंगार की ही रचनायें हुई हैं, मुझे एक दुखद आश्चर्य में डाल देती है । तथ्य तो यह है कि इस युग की समस्त साहित्यिक धाराओ के काव्य-ग्रन्थो का विवरण प्राप्त करने पर रीतियुग सर्वाधिक समृद्ध प्रतीत होता है । इसमें एक-एक धारा के काव्यग्रन्थ प्रभूत संख्या में लिखे गये है । इस युग के कवि का व्यक्तित्व आधुनिक युग के साहित्यकार के समान प्रायः बहुमुखी है । अधिकांश बड़े-बड़े कवियों ने वीर, भक्ति, शृंगार, नीति सभी प्रकार के काव्य लिखे है । केशव, मतिराम, चिन्तामणि, सूरति, वृन्द, दास, पद्माकर रसिक गोविन्द आदि कवियों के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । अतः यह सोचना या समझना भ्रान्तिपूर्ण है कि इस युग में या इस युग के कवियों द्वारा केवल शृंगारी काव्य का ही प्रणयन किया गया है ।

इसके अतिरिक्त रीतियुग के समग्र साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि रीतियुगीन काव्य पलायनवादी काव्य नही था। उसमें यद्यपि अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है, समर्थ तथा उच्च एवं सूक्ष्म कल्पना का वैभव भरा है, फिर भी जीवन की—यथार्थ की धरती पर ही इस युग के पैर है। चाहे जीवन के हास्य-विनोद, भोग-विलास, नायक-नायिका के प्रेम-सौन्दर्यमय क्रियाकलाप को लें, चाहे वीरों की प्रशस्ति एव गुणावलियों को, अथवा सन्तों एवं भक्तों की निर्वेद और साम्य समन्वय भावना को लें; हम सर्वत्र यह देख सकते हैं कि यथार्थ की उपेक्षा नही की गई है। अधिकाशतः इस युग के साहित्य की प्रवृत्ति जीवन के उपभोग्य स्वरूप का उद्‌घाटन है, चाहे वह लौकिक पक्ष हो, चाहे आध्यात्मिक पक्ष।

रीतियुगीन काव्य की व्यापकता और विविधरूपता का परिचय पाने के लिए हम संक्षेप मे इस युग में प्रवहमान विभिन्न-काव्य धाराओं का उल्लेख आवश्यक समझते है। इस उल्लेख में हम यह बात स्पष्टतया देख सकते है कि पूर्ववर्ती युगों की समस्त काव्य-धारायें, इस युग में विकास और विस्तार को प्राप्त हुई हैं। इस युग की कलाप्रियता एव साहित्यिक अभिरुचि का एक स्तुत्य प्रमाण इस बात में ही मिल जाता है कि नूतन साहित्य धाराओ के स्रोत फूटने पर भी कोई भी पूर्वगामी काव्य-धारा इस युग में सूखी नही। प्रत्येक काव्यधारा को इस युग में सरस समर्थन प्राप्त हुआ। सबसे पहले हम पूर्व युग-वर्ती धाराओं को लेगे। इनका नामोल्लेख इस प्रकार है :—

वीरकाव्य, संतकाव्य, प्रेमाख्यानकाव्य कृष्णभक्तिकाव्य तथा रामभक्तिकाव्य।

रीतियुगीन वीरकाव्य

हिन्दी वीरकाव्य का श्री गणेश उसके साहित्य के उद्‌भव काल में ही हो चुका था। कुछ लोगों के विचार से तो उसका प्रारम्भ ही वीर गाथाओं से होता है। रासो और आल्हा जैसी समर्थ रचनायें इसके प्रमाण में है। मध्य-काल या विकास-काल के प्रथम युग अर्थात् भक्तियुग में भी वीररस की रच-नाएँ हुई। गोस्वामी तुलसीदास के युद्ध वर्णन, गंग, केशवदास आदि कवियों की वीररस की उत्तम कविताएँ मिलती है। परन्तु इस पूर्ववर्ती युग में उसकी कोई निश्चित धारा नही है। रीतियुग मे वीर-काव्य की प्रबल धारा बहती हुई दिखायी देती है। हम यह कह सकते है कि वीरकाव्य का जो स्पष्ट

रूप हमें रीति युग में मिलता है, वह किसी भी युग मे नही । वास्तव में रीति-युग ने वीरकाव्य की रचना मे सबसे महत्वपूर्ण योग दिया है । उसका कारण यह है कि यह समय एक साथ ही युद्ध और विलासिता का युग था । दैनिक जीवन में विलासिता की प्रवृत्ति छायी हुई थी । विलासिता के अधिक से अधिक साधन जुटाने में एक दूसरे से सघर्ष और टक्कर हो जाना भी स्वाभाविक था । अत: युद्ध उसके परिणाम थे । युद्ध का दूसरा कारण अत्याचार एव अधर्म का विरोध था । इस दूसरे प्रकार के कार्य मे जो वीरता का भाव इस युग मे जाग्रत हुआ था, उसका वर्णन करने वाले कवियो मे हमे अधिक ओज तथा उदात्त तेज के दर्शन होते है । इसलिये हम देखते है कि औरगजेब के अत्याचार का विरोध और शिवाजी की वीरता का वर्णन करने वाले भूषण तथा अलाउद्दीन के अन्याय से टक्कर लेने वाले हमीर का गुणगान करने वाले जोधराज और चन्द्रशेखर वाजपेयी की रचनाओ मे जो उदात्त प्रभाव दिखायी पडता है, वह केवल अपने आश्रयदाता के रूप मे किसी राजा की प्रशसा करने वाले कवियो की रचनाओ मे नही दिखलायी देता । मुख्यत. इस युग का वीर-काव्य प्रसिद्ध वीरो जैसे शिवाजी, क्षत्रसाल या हम्मीरदेव आदि के वीरतापूर्ण कार्यो एव इनके ओजतेजमय व्यक्तित्व एव चरित्र-वर्णन के रूप मे है या फिर उस समय घटित युद्धो के वर्णन के रूप मे दिखायी देता है । यद्यपि प्रथम प्रकार के वीर काव्यो का अधिक स्थायी प्रभाव है, फिर भी द्वितीय प्रकार के काव्यो का भी ऐतिहासिक एवं सामाजिक महत्व है ।

यो तो वीरकाव्य प्रसंगवश लिखने वाले कवियो की सख्या काफी अधिक है, क्योंकि रीतिकवियो तक ने अपने लक्षण ग्रथो मे वीररस तथा ओजगुण के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वीररस की रचनाएँ की है, परन्तु वीरकाव्य धारा के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख कवियो और उनकी रचनाओ के नाम है :– भूषणकृत शिवराज भूषण, शिवाबावनी एव छत्रसालदसक, मानकवि कृत राज-विलास, तालकवि कृत छत्रप्रकाश, श्रीधर कृत जंगनामा, सूदन कृत सुजानचरित्र, हरिकेश कृत जगतसिंह दिग्विजय, जोधराज कृत हम्मीर रासो तथा चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत हम्मीर हठ । कविवर पद्माकर यद्यपि शृगारी कवि के रूप मे है, फिर भी, उनकी हिम्मत बहादुर विरुदावली वीरकाव्य का उत्तम उदाहरण है ।

रीतियुगीन वीर काव्यधारा के कवि प्राय: सुविख्यात है, अत: इनके परि-

चय देने की यहाँ आवश्यकता नही प्रतीत होती है । मैं समझता हूँ कि केवल उनके वीरकाव्य के कुछ नमूने ही इस प्रसग को पूर्णतया हृदयंगम कराने के लिए पर्याप्त होंगे । सबसे पहले हम कविनायक भूषण को लेते है । भूषण ने अपने वर्णनों में जो व्यक्तित्व, चारित्र्य एवं घटनाचक्र का सजीव रूप प्रस्तुत किया है उसे पढ़कर कभी-कभी दुःख होता है कि ऐसे प्रतिभासम्पन्न कवि ने कोई प्रबन्ध-काव्य क्यो नही लिखा ? शब्दों के निर्माण तथा शब्दों के चयन-संयोजन की उनमें विलक्षण शक्ति थी । शब्द-प्रभाव के सहज स्फुटित विवेक के कारण भूषण की रचना मे भाव का वर्णन न होकर भावाभिनय होने लगता है । प्रमाणस्वरूप एक छन्द है :—

बाने फहराने घहराने घण्टा गजन के,
नाहीं ठहराने रावराने देस-देस के ।
नग भहराने, ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने शिवराज जू नरेस के ।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन कौ भजाने अलि छूटे लटकेस के ।
दल के दरारे हूते कमठ करारे फूटे,
केला के से पात बिहराने फन सेस के ।

वीरकाव्य-धारा के अन्य कवियो के युद्ध-वर्णन ही प्रायः अधिक महत्व के हैं । इन कवियों की प्रधान विशेषता अतिशय विवरण देने की है । जैसा कहा जा चुका है कि इनका सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व विशेष है । सूदनकृत "सुजान चरित" में तो वस्तुओं का ककहराक्रम से (वर्ण के अनुसार) परिगणन किया गया है जिसका नामोल्लेख के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं । युद्ध-वर्णन भी ध्वन्यात्मक शब्दों की खिलवाड़ जान पड़ती है—

रध धुन्धकाक्ष धुन्धर धडड घुंकट घननन ।
धर धूम धाम धड़ाक धद्धर धूम डट्टय बननन ।
ममकार मम्मड मडडडं मंकात भग्गत मनूनन ।
कहु सननन कहुं खननन कहुँ झननन कहुं ठननन ॥

इस छन्द में शस्त्रास्त्रों की युद्धान्तर्गत ध्वनियों का यथार्थ वर्णन अवश्य है, पर उसमें युद्ध की गम्भीरता और भय या उत्साह को प्रेरित करने की सामर्थ्य

नहीं । पद्माकर की हिम्मत बहादुर विरदावली में यद्यपि युद्ध-क्रिया का अधिक सजीव रूप प्रकट हुआ है, फिर भी भाव-सचारकता के स्थान पर तटस्थ दर्शन की ही विशेषता अधिक दिखलायी देती है, जैसे —

गहि-गहि हय लटकैं दिशिदिशि भटकैं भूपर पटकैं नहि अटकैं ।
पाइन सों पीसैं अदिगन मीसैं जबसे दीसैं नहिं भटकैं ।
प्रति गजन उठेलैं बंतन ठेलैं ह्वै भटमेल जो करैं ।।

इसमें घोड़ों और हाथियों के युद्धों का वर्णन है । छन्द सहज गति से चलने वाला है ।

इस प्रसंग में हरिकेश के कुछ छन्द ओज और वीरता की सृष्टि करने वाले हैं । छत्रसाल की प्रशंसा में लिखा उनका एक छन्द द्रष्टव्य है :—

डहडहे डंकन को सबद निसंक होत,
बहबही सुत्रन की सेना अति सरकी ।
हाथिन के झुण्ड मारु राग को उमंड इते,
चंपति को नंद चढ्यो, उमडि समर की ।
कहै हरिकेस काली ताली दे नचत ज्यों-ज्यों ।
लाली उछरत छत्रसाल मुखवर की ।
फरकि-फरकि उठैं बाहैं अस्त्र बाहिबे को,
करकि-करकि उठैं कड़ी बखतर की ।

भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नही, यह कविता रीतियुग की है ।

रीतियुगीन संतकाव्य

अब हम प्राचीन वैदिक साहित्यरूपी हिमगिरि-शैलशृंग के अदृश्य स्रोत से उद्भूत भक्तियुग रूप मैदान खंड के हरिद्वार से प्रकट होने वाली भक्ति-काव्य-गंगा का परिचय दे रहे हैं जो इस युग के विशाल भूभाग में शतधार होकर अनेक प्रकार की क्षुद्र-विशाल सविकार निर्विकार, साकार निराकार धाराओं को समेट कर बहती हुई दिखलाई देती है । इस भक्ति-काव्यगंगा का इस युग में विशाल विस्तार दिखाई देता है । पूर्ववर्ती युग को हम भक्तियुग इसलिए कहते हैं कि उसमें इस युग की भक्तिकाव्यधारा के गंगोत्री, जमनोत्री जैसे उद्गम स्थान हैं । निर्गुण और सगुण भक्तिकाव्य धाराओं के उद्गमकर्ता या प्रवर्तन कर्त्ता कबीर, जायसी, सूर, तुलसी का

संबंध जिस युग से है, उसे ही भक्तियुग कहना चाहिए । परन्तु यह सत्य है कि इनके द्वारा प्रवर्तित सन्त, प्रेमाख्यान, कृष्णभक्ति एवं रामभक्ति काव्यधारायें रीतियुग में आकर असीम विस्तार को प्राप्त हुईं । इतना ही नहीं ये विभिन्न संप्रदायों एवं पंथों की शाखा-प्रशाखाओं में भी विभक्त होकर बहुविध रूप में इस युग में दिखलायी देती हैं । इन विभिन्न भक्तिकाव्यधाराओं का विशेष परिचय देने की आवश्यकता नही है । केवल इनके विस्तार और प्रसार का अनुमान जिससे लगाया जा सके, उतना ही कहना है ।

संतकाव्यधारा अनेक पंथो एवं संप्रदायों में प्रसरित देखी जाती हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण नाम है— कबीर पथ, नानकपंथ, दादूपंथ, निरजन संप्रदाय, बावरी पंथ, सतनामी पंथ, शिवनारायणी पंथ, प्राणनाथी राधास्वामी मलूक-दासी पंथ आदि । इनमें से एक-एक पंथ के अन्तर्गत अनेक संत कवि हुए हैं जिनमें से सहस्त्रों छन्दों की रचना करने वाले कम नही है । अपनी साधना को प्रेरणा देने वाली वानि यों के अतिरिक्त जिनकी वाणी काव्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, ऐसे सन्तों की भी कमी नही । सुन्दरदास, रज्जब, यारी, पलटू, मलूकदास, जगजीवनदास, चरनदास, शिवनारायण, तुलसी साहेब आदि अनेक सन्त अपनी वाणी के प्रभाव का जादू रखने वाले कवि ही थे । इनके संबंध में तो हम बहुत कुछ जानते भी है, परन्तु एक संप्रदाय ऐसा है जिस के सबंध मे प्राय.बहुत कम जाना गया है । यह है निरजन संप्रदाय । ओरियण्टल कांफरेन्स के तिरूपति अधिवेशन में स्व० डॉ० पीताम्बरदास बड्थवाल ने हिन्दी शाखा के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए इस संप्रदाय के उन हिन्दी कवियों का पहले पहल उल्लेख किया था जिन बारह निरंजनी कवियों का विवरण राघवदास ने अपने भक्तमाल (संतमाल) में दिया है । निरंजन संप्रदाय के कवियों में हरिदास, तुलसीदास, सेवादास, मनोहरदास, कान्हडवास आदि विशेष प्रसिद्ध है । प्रथम तीन की तो सहस्त्रों की संख्या में वाणियाँ उपलब्ध है । इस प्रकार कबीर, नानक, दादू, जैसे कुछ कवियों द्वारा प्रवर्तित संतकाव्य धारा का कितना विपुल विस्तार रीतियुग में आकर हुआ, इसका अनुमान ऊपर के संक्षिप्त उल्लेख द्वारा भी सहज ही लगाया जा सकता है ।

रीतियुगीन प्रेमाख्यानकाव्य

यही दशा प्रेमाख्यान काव्य की है । प्रेमाख्यान काव्य में निराकार ईश्वर की उपासना और साधना का संकेत कथा द्वारा देकर प्रेम

की सर्वोपरि महत्ता बताई गयी है । इस धारा के तीन कवि कुतुबन मंझन और जायसी हमें भक्तियुग में प्राप्त होने है, परन्तु रीतियुग में आकर इस धारा ने भी असीम विस्तार प्राप्त किया और अनेक महत्त्वपूर्ण कवियों ने अनेक ग्रंथ उसी पद्धति पर लिखकर हमारे हिन्दी साहित्य के भंडार को समृद्ध किया । प्रेमाख्यान काव्यधारा की दो शाखायें दिखलायी देती है–एक तो शुद्ध प्रेमाख्यानों की और दूसरी रूपकात्मक प्रेमाख्यानो की । भक्ति का संकेत रूपकात्मक प्रेमाख्यानों में मिलता है । परन्तु इस युग में रचे गये शुद्ध प्रेमाख्यानों की भी एक बड़ी लम्बी संख्या है जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण नाम है--केसकवि, हंसकवि, बोधा, जनकुज, गणपति, दामोदर आदि । रूपकात्मक प्रेमाख्यानो का इस युग में अधिक विस्तार हुआ । अनेक प्रेमकथाओं के माध्यम से इस धारा के कवियो ने प्रेमभावना और सूफी सिद्धान्तो का प्रचार किया । रीतियुग में इस सूफी प्रेमाख्यानकारो के लिये यद्यपि आदर्शरूप ग्रंथ जायसी का पद्मावत ही रहा, फिर भी अनेक कवियो ने बहुसख्यक ग्रंथों मे जोरदार रचनाये प्रस्तुत की हैं । इन कवियो मे प्रमुख है–जानकवि, कासिमशाह, सूरदास, दुखहरनदास, नूरमुहम्मद, शेख निसार आदि । रीतियुग के पश्चात् आधुनिक काल में भी यह परंपरा चलती रही । जानकवि ने जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब--तीन बादशाहों का समय देखा था । इन्होंने ७० ग्रंथो की रचना की थी जिनमे से २१ प्रेमाख्यान थे । इनमे से प्रसिद्ध है कनकावति, कामलता, मधुकर-मालति और छीता । इन ग्रंथों में जानकवि ने ललित शैली में काव्यरचना की है । उदाहरणार्थ "छीता" ग्रंथ में नायिका का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा है—

अजहूँ कली फूल नहिं भई । रूप बास तौऊ जग छई ।
साढे वसन सेत ही अंग । तामैं वदन कमल मधि गंग ।
सेतवसन उज्ज्वल वदन, देखत बढ़त अनंद ।
कहत जान सोहत सुभग, मनहुँ चाँदनी चंद ।।

कासिमशाहकृत "हंसजवाहर" भी प्रसिद्ध रचना है । इसी प्रकार सूरदास कृत "नलदमन", दुखहरनदास कृत "पुहुपावती", नूरमुहम्मदकृत "इन्द्रवती अनुराग वाँसुरी" तथा शेख निसारकृत "यूसुफ जुलैखा" सुन्दर रचनायें है जिनमें प्रेमकथायें अवधी भाषा में दोहा शैली में वर्णित हुई है । इन रचनाओं

में संयोग और वियोग दोनों ही प्रकार के शृंगार का वर्णन हुआ है, परन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग का वर्णन अधिक मर्मस्पर्शी है। इनमें रूपक के आधार पर निर्गुण परमात्मा के प्रति प्रेमोपासनामय साधना का उपदेश दिया गया है।

वास्तव में रीतियुग, निर्गुणोपासना से अधिक सगुणोपासना के लिए उपयुक्त था। हिन्दूमुस्लिम दोनों ही धर्मभावनाओं को समन्वित साधना का मार्ग बताने के लिए ही विशेषरूप से ईश्वर के निराकार स्वरूप का सांकेतिक उद्‌घाटन संत एवं सूफी काव्यधाराओं में मिलता है। परन्तु इस युग में आकर इन निर्गुणोपासक धाराओं में भी सगुण स्वरूप अधिक स्पष्ट होता दिखाई देता है। तुलसी और सूर की रचनाओं के प्रभाव स्वरूप सन्तकाव्यधाराओं में भी अवतार तथा देवी-देवताओं पर आस्था के भाव दिखलाई देते हैं जो कि पूर्ववर्ती तथा इस युग की सगुणोपासक भक्तिकाव्यधारा का प्रधान प्रतिपाद्य था।

रीतियुगीन कृष्णभक्तिकाव्य

रीतियुग में कृष्णभक्तिकाव्य का भी विभिन्न कृष्णोपासक सप्रदायों के माध्यम से बहुविध विस्तार हुआ। इन संप्रदायों में प्रधान वल्लभ संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय है। इनके अंतर्गत अनेक भक्तकवियों ने असंख्य पदों की रचना की जो कवित्व एव भक्तिभावना दोनों ही दृष्टि से अत्युत्कृष्ट हैं। कृष्णोपासक संप्रदायों का भक्ति के प्रचार और प्रसार में जो योग है, वह तो है ही, परन्तु इस युग के ललित काव्य की रचना में भी उनकी देन बड़ी महत्वपूर्ण है। विभिन्न कृष्णोपासक संप्रदायों के कवियों में अधिक प्रमुख व्यक्तित्व हैं—ध्रुवदास, नागरीदास, चाचा हितवृन्दावनदास, सुन्दरि कुँवरि, वख्शी हंसराज, ब्रजवासीदास, मंचितकवि, हठीजी आदि। इन कवियों ने असंख्य ललित छन्दों और पदों की रचना की। कृष्णकाव्य के विशाल साहित्य को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे कृष्ण के रूप-सौन्दर्य, लीलाविलास तथा माधुर्यभाव ने इन कवियों के हृदयों में काव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित कर दिया था और ये अनवरत अशिथिल रूप से अपने आराध्य कृष्ण-राधा की रूपमाधुरी एवं ललितलीलाओं का वर्णन करते हुए भी कभी

न अघाते थे । ध्रुवदास ने चालीस ललित ग्रंथों की रचना की । नागरीदास का काव्य अतिप्रख्यात था । इनकी प्रेमरस से सराबोर रचनाओं को पढ़ते ही हृदय निमग्न हो जाता है । चाचा हितवृन्दावनदास तो असंख्य पदों के रचयिता थे । कहा जाता है कि इन्होंने चार लक्ष पद रचे जिनमें से डेढलक्ष पदों के अनेक संग्रह अब भी छतरपुर राजपुस्तकालय में मिलते है । मैंने छतरपुर में इनके कुछ संग्रहों को देखा भी है । इनके एकही ग्रंथ 'प्रेमनंद सागर' में अप्रकाशित ५७७५ पद हैं । इससे इनकी रचना के बहुसंख्यक होने का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । पर रचना का आधिक्य उसके काव्य गुण को बाधित नहीं कर सका है ।

सुन्दरि कुँवरिबाई नागरी दास की बहिन थी । इन्होंने ११ ग्रथों की रचना की थी । इनकी रचना भी काफी सुन्दर होती थी । एक छन्द उदाहरण के लिए यहाँ पर दे रहे हैं—

श्याम रूप सागर में नैन वारपार थके,
नचत तरंग अंग-अंग रंगमगी है ।
गाजन गहर, धुनि बाजन मधुर बेनु,
नागिनि अलक जुग सोंधे सगबगी है ।
भँवर त्रिभंगताई पानिप लुनाई तामैं,
मोती मनि जालन की जोति जगमगी है ।
काम पौन प्रबल धुकात लोपी पाल तामैं,
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है ।

ब्रजवासीदास का "ब्रजविलास" तो अत्यंत प्रसिद्ध ग्रथ है और मानस के समान दोहा चौपाइयों में यह ब्रजलीलाओं के लिये पढ़ा जाता है । कवि मंचित का प्रसिद्ध ग्रंथ कृष्णायन है । इसकी रचना भी बड़ी ललित है । "मंचित" एक उत्कृष्ट कोटि के कवि थे । इनके काव्य में ललित शब्द-योजना एवं उक्तिचमत्कार प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ एक छन्द है, जो अक्षयतृतीया के अवसर पर पीपल पूजने के प्रसंग पर लिखा गया है—

तुम नाम लिखावति हौ हम पै, हम नाम कहौ कहा लीजिये जू ।
जब नाव चलै सिगरी जल में थल में न चलै कहा कीजिये जू ।
हम कवि मंचति औसर जो अकती सकती हम पै नहिं कीजिये जू ।
हम तौ अपनो वर पूजति हैं, सपने नहिं पीपर पूजिये जू ।

इस छन्द में पातिव्रत भाव के साथ-साथ एक सांस्कृतिक झांकी भी प्रस्तुत की गयी है । कृष्णोपासक कवियों का पदसाहित्य भी बड़ा ही भावपूर्ण एवं सरस है ।

रीतियुगीन रामभक्तिकाव्य

रीतियुग में रामकाव्यधारा का भी प्रचुर विकास हुआ । पर यह रीतियुगीन रामकाव्य रसिक साप्रदायिक है, रामायण अथवा गोस्वामी तुलसीकृत रामचरितमानस की पद्धति पर चलनेवाला नही । इस युग में रसिक परंपरा के कवि ही अधिकाश मे मिलते हैं । दो-एक नाम ऐसे अवश्य हैं जिन्होंने अपने ग्रंथों मे रामकथा का मर्यादावादी रूप प्रकट किया है । यथा गोविन्दसिंह ने 'गोविन्द रामायण' मे, सरजूराम पंडित ने 'जैमिनिपुराण' में, मधुसूदनदास ने "रामाश्वमेध" में तथा महाराज विश्वनाथ सिह ने 'आनंद रघुनंदन नाटक' और 'आनंद रामायण' मे । परन्तु इनके अतिरिक्त जो रसिक साप्रदायी कवि हुए उनमे से प्रसिद्ध नाम है—रामप्रियाशरण, जानकी रसिक अली, ललकदास, जनकराजकिशोरशरण, प्रेमसखी, रसिक बिहारी, रघुनाथदास, हेमलता । रघुनाथदास, रामसनेही, बनादास आदि । रीतियुग के इन रामोपासक कवियों ने अधिकाश मे रसिक रूप मे कवितायें लिखी है अर्थात् राम का लीलापुरुषोत्तम रूप इनके सामने रहा है, मर्यादा पुरुषोत्तम रूप नही । इसका कारण यह है कि इस परंपरा के रामोपासक कवियो के सामने मुख्य लक्ष्य सांप्रदायिक उपासना का था । इनकी साधना अधिकाशत: वात्सल्य या माधुर्य भाव की दिखलाई देती है । सामाजिक एवं लोकदृष्टि का अभाव इनकी रचनाओं में मिलता है जो गोस्वामी तुलसीदास की मर्यादावादी रचनाओं का प्रमुख स्वर था । ऐसा कहा जा सकता है कि इस संप्रदाय पर कृष्णोपासक रसिकसंप्रदायों का प्रभाव पड़ा और मंदिर या मठों से संबंधित सांप्रदायिक रामोपासक साधना भी उसी पद्धति पर ढलकर बह चली जिसपर कृष्णोपासना चल रही थी । यह भी कहा जा सकता है कि कृष्णभक्तिकाव्य की माधुरी ने लोगों को इतना अधिक आकृष्ट किया कि मर्यादा वादी राम के स्वरूप में भी रसिकता का समावेश हो गया और इन कवियों ने भी रामलला और जनकलली के रूपलावण्य तथा लीलाविलास के पद गाना ही अपना कर्त्तव्य समझा । इसका कारण यह समझा गया कि

मर्यादावादी राम का रूप उतना सरस न था जिसमें मनोरमता का पूर्णतया संचार हो सकता । परन्तु बात ऐसी नही है । वास्तव में हमें गोस्वामी तुलसीदास को इस परम्परा के काव्य में अपवाद के रूप मे स्वीकार करना चाहिए । उन्होंने देश, काल और समाज की आवश्यकता के अनुसार रामचरित के उदात्त और आदर्श स्वरूप का चित्रण किया है जो जीवन के स्वस्थ तत्वो को उभार कर समाज के विकसनशील तन्तुओ के सगठन एवं सयोजन द्वारा जीवन को परिपूर्णता की ओर अग्रसर करता है । तुलसी के रामचरितमानस के युगान्तर स्थायी प्रभाव और महत्व का यह एक कारण है । हम यह कह सकते है कि इस युग की रामकाव्यधारा युगीन शृगारिक चेतना से बच न सकी । उसका रसिक साम्प्रदायिक रूप फिर प्रकट हो गया ।

रीतियुगीन नीतिकाव्य

नीतिकाव्य मुक्तक काव्य के रूप मे विशेष पल्लवित हुआ । यद्यपि हम अन्य रचनाओं के बीच-बीच भक्तियुगीन काव्यों मे भी नीतिमुक्तको को पाते है, पर नीतिमुक्तकों की रीतियुग मे एक विशिष्ट प्रकार की परम्परा का निर्माण हुआ और इन नीति मुक्तकों का छन्दसिक माध्यम दोहा, कुण्डलिया और छप्पय विशेषरूप से बने । इस युग के नीति मुक्तको मे यथार्थ जीवन के वास्तविक अनुभव के निचोड़ के रूप मे हमें ऐसे छन्द मिलते है जो वैयक्तिक, सामाजिक अथवा धार्मिक आचरण के विधि-निषेधमय सूत्र है । इनमे प्राय हमे एक प्रकार का स्मरणीय आचरण शास्त्र प्राप्त होता है । इन नीतिकारों की रचनाओ मे जीवन के अनुभवों का प्रकाशन उपदेश रूप मे भी हुआ है और अपनी बीती के रूप में भी । अतएव प्राय: प्रत्येक नीतिकार की रचना अपनी निजी विशेषता से ओतप्रोत है । इस काव्यधारा मे बड़ी रोचकता से अवगाहन कर हम दैनिक जीवन सागर में सन्तरण का अभ्यास तथा साहस प्राप्त करते है । अपने अनुभवों को सरस संक्षिप्त रूप में अन्योक्ति, प्रतीक या रूपकात्मक शैली मे रखकर इन कवियों ने समाज का विशेष उपकार किया है । हिन्दी साहित्य के "रीतियुग" में इस नीतिमुक्तक परंपरा का सुन्दर विकास हुआ है । इस परम्परा के कुल महत्वपूर्ण कवियों का यहाँ सक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट होगा ।

नीतिकार कवियों म छत्तीसगढ़ के गोपाचन्द्र मिश्र का नाम उल्लेखनीय है । इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की । इनका "खूब तमाशा" नामक ग्रंथ

बड़ा मनोरंजक है। चारों दिशाओं के दुःखों-सुखों का इनका वर्णन बड़ा रोचक और स्मरणीय है। इनके नीति संबंधी अनेक छन्द अति प्रसिद्ध हैं। किसान के काम और उसके कठिन जीवन पर प्रकाश डालता हुआ इनका एक छन्द इस प्रकार है :—

कारी होत देह सहै सीत घाम मेह,
नित रहै लेह देह सुख नहीं खानपान को।
ईति भीति से उदास गिरिमान नयमान को।
राजै देत पोता हरजोता खूब सोता
नहिं खोता दिन यों ही रहै लेस न सयान को।
देह में न चाम रहै हाथ में न दाम,
याते कहत "गुपाल" काम कठिन किसान को।

इस युग के अन्य नीतिकार कवियों में वृन्द, बैताल, घाघ, गिरिधर, सम्मन और दीनदयाल गिरि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

वृन्दकवि के नीति संबंधी दोहे अति प्रसिद्ध हैं। शुद्ध नीति की दृष्टि से वृन्दसतसई अपना विशिष्ट स्थान रखती है। बैताल के छप्पय, लोकनीति की जोरदार सूक्तियों के रूप में प्रख्यात हुए। "टके" पर प्रसिद्ध छप्पय इन्हीं का है जिसकी दो पंक्तियाँ है :—

अब एक टके बिन टकटका लगो रहत नित राति दिन।
बेताल कहैं बिक्रम सुनो धिक जीवन एक टेक बिन॥

बेताल की टके वाली उक्ति आज भी उतनी ही सत्य है। घाघ की घरेलू ग्रामीण किसानी नीति की सूक्तियाँ, ग्राम्य किसानों के बीच कृष्टि और आचार शास्त्र का काम करती है। अपनी कहावतों मे घाघ किसी को भी नहीं छोड़ते। एक उदाहरण देखिये :—

आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खाँसी।
अँखियाँ लीबर बेसवै नासै, बाबै नासै दासी॥

कहावत कितनी सटीक है। वृन्द कवि के समान ही गिरिधर कविराय अपनी कुण्डलियों के लिए अति प्रसिद्ध है। गिरिधर की कुण्डलियों में व्यापक और गहरी नीति की बातें कही गयी है, जो बड़ी जीवनोपयोगी हैं। इनके छन्दों में गृह्य नीति, समाजनीति, राजनीति सभी की बातें आ जाती हैं। सम्मन

कवि वृन्द के समान अपने नीति के दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु जहाँ पर वृन्द ने संस्कृत के हितोपदेश, चाणक्य नीति, विदुरनीति जैसे ग्रंथों से अपनी सूक्तियाँ जुटाई है, वहाँ सम्मन ने अपने निजी जीवन अनुभवों का निचोड प्रकट किया है । वे कहते है :—

सम्मन चहु सुख देह को, तौ छोड़ौ ये चारि ।
चोरी चुगली जामिनी, और परायी नारि ।।

नीतिकार कवियों में गिरिधर के समान ही, वरन् उनसे भी अधिक जोरदार सूक्तियाँ दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियो मे मिलती है । गिरि एक बड़े ही प्रतिभासंपन्न कवि थे । इनकी रचनाओं में अनुभव और पाण्डित्य की विदग्धता के साथ-साथ उक्ति की मधुराई भी विद्यमान रहती है । वे कहते है :—

हरि के सुमिरे दुख सबै, लघु दीरघ अघ जाँहि ।
जैसे केहरि भूरि भय, करि मृग दूरि पराँहि ।
पूजत लोग मलीन को, पावन जन पूजैं न ।
कर्ण घ्राण सुबरन लसै, लेपत कज्जल नैन ।

इनकी अन्योक्ति कल्पद्रुम की कुण्डलियाँ तो अत्यन्त ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय है । दीन दयालगिरि बहुरस-सिद्ध कवि थे । हम प्रायः उन्हे नीतिकार कवि के रूप मे ही जानते है परन्तु उनकी शृंगार और भक्ति की रचनायें भी बड़ी सुन्दर है । "अनुरागबाग" नामक ग्रथ का एक छन्द देखिए :—

फुही फुहा बूँद झोर वारिवाहन ते,
कुहू-कुहू सुनि परै कूक कोकिलान की ।
ताही समै स्याम झूलते हिंडौरे चढ़े,
वारौं छवि कोटिन में रति पंचवान की ।
कुण्डल लटक सोहै भृकुटी मटक मोहै,
अटक चटक पट पीत फहरान की ।
झूलत समै की सुधि भूलति न हूलति री,
उझकनि झुकनि झकोरनि भुजान की ।।

रीतियुगीन हास्य-व्यंग्यविनोदकाव्य

नीतिकाव्य धारा के समान ही "हास्यव्यग विनोद" काव्यधारा भी इस

युग में बहती दिखाई देती है जो इस बात की द्योतक है कि इस युग क साहित्य एकांगी न होकर जीवन के विविध पक्षों के स्पर्श द्वारा प्रस्फुटित होने वाला साहित्य था। आध्यात्मिक साधना का वातावरण होते हुए भी जीवन के भौतिक पक्ष के प्रति उदासीनता न थी। इस पक्ष का खिलता-फूलता रू जिसमें जीवन की मौज-मस्ती, हास्य-विनोद की छटा छिटकी हुई है, इस यु के काव्य में कम नही है। पर्याप्त सूक्तियाँ तो नीतिकारों के मुक्तकों में मिलत हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त, हुक्के की प्रशंसा, घोड़ों की पहिचान, सूम की निन्द खटमल, भंड़ौआ आदि से संबंधित कविताये भी काफी संख्या में मिलती है। बेन कवि के भंड़ौए प्रसिद्ध है। इनके भड़ौओं में हास्य की फुहार के साथ-सा व्यंग्य के तीखे छींटे मिलेगे। बाबा लालदास जो रामभक्ति परम्परा में रसि सम्प्रदाय के कवि थे, अपने भक्तजनो मे स्त्रियों को विशेष प्रोत्साहन देते थे बेनी कवि की दृष्टि इन पर पड़ी और झट से एक छन्द का तीर उन्होंने छो ही दिया जिसकी नोक इस प्रकार की है :—

बाजे बाजे ऐसे डलमऊ में बसत जैसे,
मऊ के जुलाहे लखनऊ के ललकदास।

मऊ के जुलाहे अपने-अपने छैलापन के लिए प्रसिद्ध थे, उन्ही की कोटि मे बाबा ललकदास भी आ गये। कवि किसी को नही छोड़ते। लखन की सड़को पर कीचड़ जम गई थी। पता नही कि बेनी कवि का घोड़ा य बैल उस कीचड़ मे फँसा या नही, पर उन्होंने छन्द बना ही डाला—

गड़ि जात बाजी औ गयन्दगन अड़िजात,
शुतुर अकड़ि जात मुश्किल गऊ की।
बावन उठाय पाँव धोके जो धरत,
होत आप गडकाब रहि जात पाग मऊ की।
बेनी कवि कहैं देखि थरथर काँपै गात,
रथन को पथ न विपति बरदऊ की।
बार बार कहत पुकारि करतार तोसों,
मींचु हू कबूल पै न कीच लखनऊ की।

इसी प्रकार अली मुहिबखाँ प्रीतम ने जो आगरे के निवासी थे "खटमलबाइसी" नामक एक हास्यप्रधान ग्रंथ लिखा जिसमें खटमलों के प्रभा

और आतंक का बड़ा विनोदपूर्ण एवं रोचक वर्णन किया गया है। 'खटमल बाईसी' का एक छन्द देखिये :—

जगत के कारन करन चारौं वेदन के,
कमल में बसै वे सुजान लान धरि कै।
पोखन अवनि दुख सोखन तिलोका के,
समुद्र में जाय सोवै सेज सेस करि कै।
मदन जरायो औ संहारै दृष्टि ही मैं,
सृष्टि बसे हैं पहार बहू भजि हरवारि कै।
बिधि हरिहर बड़ौ इनतेन कोऊ तेऊ,
खाट पै न सोवै खटमलन सों डरि कै।

इसी प्रसंग में एक सूम कजूस का भी व्यंग्यपूर्ण वर्णन पठनीय है :—

पौर मैं किवार देत, घरै सबै गारि देत,
साधुन को दोष देत प्रीति न चहत हैं।
माँगने को ज्वाब देत, बात कहे रोय देत,
लेत देत माँज देत ऐसे निबहत हैं।
बागै हू के बंद देत, बोरन की गाँठ देत,
परदन की काँछ देत काम में रहत है।
ऐत पै रुडोही कहैं लाला कछु देत नाहिं,
लाला जू तौ आठौं जाम देत ही रहत हैं।।

इसी प्रकार के हास्य-व्यंग्य सम्बन्धी अनेक छन्द रीतियुगीनकाव्य मे मिलते है और इस काव्य-प्रवृत्ति का अपना महत्व है। इस प्रसंग में 'पद्माकर' के होली-वर्णन सम्बन्धी हास्यविनोद की अपनी विशेषता है। हम उसे शृंगारिक हास्य कह सकते हैं। "नैन नचाय कही मुसुकाय लला फिरि आइयो खेलन होरी" तो उनका अति प्रसिद्ध छन्द है ही। होली के हुड़दंग के एक ललित दृश्य का विनोदपूर्ण वर्णन 'पद्माकर' द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :—

ऊधम ऐसो मचो ब्रज मों सब, रंग नरंग उमंगन सींचै।
वै पिचकारिन छज्जन छत्तिन ह्वै छवि छाजत केसरि कीचै।
त्यों 'पद्माकर' होंहुँ गई हुती, पीछे गोपाल गुलाल उलीचै।
एकै संग जो मैं रपटी सखी वै भये ऊपर मैं भई नीचै।

होली का हास्य है, अतः यह वर्णन भी क्षम्य है ।

आचार्य भिखारीदास ने जैसा लिखा है कि "आगे के कवि रीझि है तौ कविताई नतु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।" आचार्य वल्लभ ने पहले ही से कह दिया था कि भगवान सर्वभावेन भजनीय है । अतः कवित्व की सिद्धि में भी यह 'राधिका कन्हाई' का स्मरण होता जाये, तो क्या बुरा है । दास जी को अपनी कविताई पर चाहे पूरा भरोसा न हो, पर 'राधिका कन्हाई' के सुमिरन से अधिक कविताई ही इनके काव्य मे सिद्ध हुई है । आगे के कवि भी काफी समय तक रीझते ही रहे, पर समय की परिवर्तित परिस्थिति मे हमे कविता का स्वरूप परिवर्तित करना ही आवश्यक था और इसीलिए आधुनिक युग मे कविता की धारा ने जबरदस्त मोड़ लिया । परन्तु इसका यह अर्थ नही कि रीतियुगीन कवियो की कविताई को कोई असिद्ध कर सकता है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस युग की प्रमुख चेतना शृंगारिक थी, हास्य विनोद के प्रसग मे भी उसका प्रभाव काफी अश मे देखने को मिलता है । गोपी-ग्वाल अथवा कृष्ण-गोपी सवादो की नोक झोक बड़े रसीले विनोद से सराबोर है । कृष्ण का दान लेना और साँकरी खोर मे दान वसूल करना प्रसिद्ध हो गया था । गोपियाँ दान देती थी, पर कभी-कभी कृष्ण की काफी खबर भी लेती थी । इस प्रसग की नोक झोक के दो छन्द दृष्टव्य है । कृष्ण अकड़कर जोर जताते और दान माँगते हुए कहते है--

नंद बबा की सौं मारिहौं सांट, उतारि कै तौ गहनो सब लैहौं ।
भौंह कमान तू काहे चढ़ावति, नैनन डाटे ते हौं न डरै हौं ।
देखत देखत ही कवि "भीषम", ग्वालन पै दधि दूध लुटैहौं ।
गूजरि गाल न मारि गँवारि, हौं दान लिये बिन जान न दै हौं ।

कृष्ण के बचन अशिष्टता भरे थे, फिर भी गोपियाँ डरने वाली नही थी । कृष्ण के इस प्रकार के वचन का मुँहतोड़ उत्तर देती हुई वे कहती है--

दानी भये नये माँगत दान हौ जाति है कंस तो बंधन जै हौ ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दै हौ ।
एंकत हौ बन में रखवानि चलावत हाथ घनौ दुख पै हौ ।
जैहै जो भूषन काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहौ ।

दूसरा छन्द यद्यपि रसखान का है जो रीतियुग के प्रारम्भ से कुछ पूर्व आते

है पर उनके सर्वेयों में रीति युगीन चेतना का पूर्ण विकास दिखाई देता है । वास्तव में हम यह कह सकते है कि रीतियुगीन काव्य चेतना का अन्तरंग भक्तियुग मे ही निर्मित हो चला था । सूरदास, नददास, रसखान, केशव, सेनापति, गग, ब्रह्म आदि की रचनाओं मे रीति-काव्य-धारा के प्रारम्भिक स्रोत देखे जा सकते है । आचार्य केशवदास ने इस शुद्ध काव्यधारा को एक शास्त्रीय प्रमाण प्रदान किया और शास्त्रीय लक्षण पद्धति को अपनाकर उसके उदाहरण स्वरूप विविध रसों, अलकारो, ध्वनि-भेदो आदि के निदर्शन रूप मे रीतिशृंगार काव्य की शुभ, मधुर मोहक धारा बह चली और इसकी सरस मादक माधुरी ने उस युग मे समस्त काव्य-स्वरूपो को प्रभावित कर दिया । यहा तक कि भक्ति काव्य भी नायक, नायिका, हावभाव, नखशिख, ऋतुविलास, सयोगवियोग, अष्टयाम आदि की पद्धति पर चलने लगे । इसीलिये इस काव्य-प्रवाह को ही रीतियुग की मुख्य काव्यचेतना के रूप मे स्वीकार करना चाहिये ।

रीतिशृंगार प्रवाह

रीतियुग मे रीतिशृगार काव्य की रचना अति प्रचुर मात्रा मे हुई और कविता को राजाश्रय भी खूब प्राप्त हुआ । तुर्क बादशाहो ने तो प्राय. फारसी कवियो को ही आश्रय दिया था, परन्तु मुगलो के शासनकाल मे हिन्दी के, विशेष रूप से ब्रजभाषा कवियो को सामान्य आश्रय प्राप्त हुआ । मुसलिम शासको के अतिरिक्त हिन्दू राजाओ ने भी ब्रजभाषा के कवियो को आश्रय दिया । उत्तर भारत मे ही नही, दक्षिण भारत मे भी ब्रजभाषा को आश्रय मिला । शाहजहाँ ने सुन्दर कविराज को, औरगजेब ने कवि वृद को आश्रय दिया था और वही उसके पुत्र के साथ कलकत्ते भी चले गये थे । उत्तर मे कमायू, श्री नगर (गढ़वाला), पटियाला के राजाश्रय मे भी इस युग के ब्रजभाषा कवियो ने सुन्दर रचनायें की । दक्षिण मे भी महाराज शाहजी, शिवाजी, शभाजी आदि ने हिन्दी कवियों को सम्मानित किया । साथ ही गुलबर्ग के संत गेसूराज की शिष्य-परम्परा में अकबरसाहि ने भूषण के बड़ भाई चिन्तामणि को आश्रय दिया था । अधिकाश आश्रय प्राप्त कवियो ने अपने आश्रय दाता राजाओ की प्रशसा के साथ-साथ लक्षण ग्रथो का ही निर्माण किया और इस प्रकार प्राय: सस्कृत ग्रंथो के आधार पर छन्द, अलकार, रीति, गुण नायिकाभेद आदि के लक्षण उदाहरणपूर्ण ग्रथ अति प्रचुर सख्या मे प्रणीत हुए । इन लक्षण ग्रथों के

निर्माण से कवि को दोहरा लाभ हुआ । एक तो यह कि उसने शुद्ध काव्य परम्परा में रचना का अवसर प्राप्त किया और कोरी राज-प्रशंसा अथवा आध्यात्मिक काव्य-रचना से अलग होकर काव्य-रचना की दूसरा यह कि उसे अपनी विद्वता और प्रतिभा, दोनों को ही एक साथ प्रदर्शित करने का अवसर मिला । इस प्रकार इस युग का काव्य व्युत्पत्ति एवं परिमार्जन दोनों का लाभ प्राप्त करने के कारण उत्कर्ष एवं विदग्ध काव्य है ।

इस परम्परा के कवियों को हम दो रूपों में देख सकते है । एक तो वे है जिहोंने लक्षण ग्रोत काव्य-ग्रथ रचे और दूसरे प्रकार के वे कवि है जिन्होने लक्षणो मे बधकर तो रचना नही की, पर उनके ध्यान में रसरीति रही अवश्य । अतःदूसरी धारा के "कवि स्वच्छन्द होते हुए भी है रीति श्रृंगार प्रवाह के ही कवि, उससे अलग नही है । लक्षण कवियों मे भी हम दो प्रकार के कवि देखते है–एक तो आचार्यत्व प्रधान कवि और दूसरे कवित्व प्रधान कवि । आचार्यत्व प्रधान कवियों मे चिन्तामणि, सूरति, श्रीपति, दास, सोमनाथ, प्रतापसाहि ललिराम आदि कवि आते है, और दूसरे कवित्व प्रधान कवि-वर्ग में मतिराम, भूषण, देव, कालिदास, रसलीन, पद्माकर, ग्वाल आदि कविगण जिनकी रचनाओं मे शास्त्रीय वैदध्य की अपेक्षा कविता की क्राति जगमगाती दिखलायी देती है ।

रीतिमुक्तधारा में हम बिहारी, आलम, रसनिधि, घनानन्द, ठाकुर, रामसहाय, दीनदयाल गिरि, बिक्रम जैसे कवि आ सकते है जिन्होने रसरीति की अभिज्ञता रखते हुये भी लक्षण के रूप मे काव्यशास्त्र का उपयोग नही किया । इन कवियों की रचना बड़ी मनोरम है ।

रीतिश्रृंगार प्रवाह के कवियों के पृथक्-पृथक् परिचय अथवा उनके काव्य विवेचन की अवश्यकता यहाँ नही प्रतीत होती है । इन कवियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुविज्ञात है । अतः इस प्रवाह के काव्य की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख ही यहाँ पर्याप्त होगा । रीतिश्रृंगार परम्परा के कवियों की सबसे बड़ी देन इनके भाषा-संस्कार के क्षेत्र में देखी जाती है । इन कवियों ने ब्रजभाषा में रचना की जो हिन्दी की एक बोली है । यह भी सत्य है कि ब्रजभाषा के अन्तर्गत विभिन्न प्रदेशीय शब्दावली का भी समावेश हुआ है; जैसे भूषण ने मराठी, बिहारी ने राजस्थानी, चन्द्रशेखर आदि ने पंजाबी अरबी फारसी, दास, रामसहाय, दीनदयाल गिरि ने अवधी के शब्दों का प्रयोग किय है । फिर भी कवियों ने

इन शब्दों को ऐसा माँज-घिसकर सुष्ठु एवं सुघर रूप में प्रयुक्त किया है कि वे भाषा-समृद्धि में सहायक बनकर ही हमारे सामने आये हैं । बिहारी के दो दोहों को देखिये —

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग ।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग ।।
सायक सम मायक नचन, रंगे त्रिविध रंग गात ।
झखौ विलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ।।

ऊपर के दोहों में ताफता फारसी का शब्द है, जो दोहे की भावना और अर्थ के अनुरूप ब्रजभाषा के रूप को धूपछाँही स्वरूप प्रदान कर रहा है है । दूसरे दोहे में सायक ,मायक शब्द एक वजन के ढाले गये है । झखौ अवधी का स्वरूप लिये हुये है और "जात जल, जल जात, लजात" शब्दों मे तो यमक के आधार पर विदग्ध कारीगरी दिखाई गयी है । इसी के वजन की पंक्ति बिहारी के एक दूसरे दोहे की यह है—"गात रूप लखि जात दुरि, जातरूप को रूप" । बिहारी के ऐसे पदों में जो शब्दों की पच्चीकारी है उसके सामने किसी हीरे को को काटकर अँगूठी मे जड़ने वाले कारीगर की प्रतिभा भी मात हो जाती है जिसके कटाव के कारण श्वेत रंग के हीरेसे सतरंगी किरण फूटने लगती है । अनेक भावों एवं अर्थों की बहुरंगी किरणें बिहारी, देव, पद्माकर आदि जैसे कवियों के भी विदग्ध काव्य से फूटती है । उन्हें प्रस्फुटित करने के लिए भावकता का प्रकाश चाहिए ।

शब्द-प्रयोग के प्रसंग में शब्द तत्व के निरपेक्ष प्रभाव और महत्व की सिद्धि भी रीति काव्य के रचयिता कवियों की रचना से हो जाती है । जहाँ अर्थ की गरिमा से शून्य छन्द केवल वर्णचमत्कार या शब्द-संगठन के बलपर ही हमें आकृष्ट करने की क्षमता रखता है । दो एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

(१) **रस सिंगार मजन किये, कंजनु भंजनु देन ।**
अंजन रंजन हू बिना, खंजनु गंजनु नैन ।।

(२) **जलजोर उठी घनघोर घटा ब्रज ऊपर कोप पुरन्दर को ।**
कवि पुष्कर गोकुल गोप सबै, निरखै मुखश्री मुरलीधर को ।
धरतें धरिबो धरनीधर को धर क्यों न हिये धरतीधर को ।
कर लै जनु कांकर को करको करनाकर को कर ना कर को ।।

इसी प्रकार शब्दावली के सौन्दर्य के साथ-साथ सुकुमार भाव-सौन्दर्य का संकेत करने वाला 'देव' का एक उपालम्भपूर्ण छन्द भी देखिये :—

हौं बनी दूलह वे दुलही उलही सुख-बेलि-सी केलि घनेरी।
हौं पहिरो पिय को पियरो, पहिरी उन री चुनरी! चुनि मेरी।
'देव' कहा कहौं, कौन सुनै री, कहा कहे होत कथा बहुतेरी।
जेहरि मेरी धरै नित जे हरि ते हरि चेरी के रंग रचेरी!

ऊपर के छन्द मे दूसरी और चौथी पक्तियों की शब्दावली का गठन द्रष्टव्य है। यह रीति कवियो की शब्द-साधना है।

रीतियुगीन रीतिशृगार धारा के कवि वास्तव मे आदि मे अन्त तक कवि ही है, कवि के अतिरिक्त और कुछ नही। भक्ति, वैराग्य, नीति उपदेश जो वृद्धावस्था की भावनाये है और जो पूर्ववर्ती तथा समवर्ती युग की अन्य धाराओं के साहित्य में परिव्याप्त थी, उन्हे छोड़कर इन कवियो ने यौवन और सौन्दर्य को अपना विषय बनाया। उन्होने जीवन के वसन्त पर छन्द लिखे, अतएव स्वाभाविक ही है कि इन कवियो का दृष्टिकोण अन्य कवियो मे भिन्न हो। इसी कारण इस प्रवाह की कविता की विशेषताओ मे सौन्दर्य एव भावचेतना प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है। भक्तिकालीन सौन्दर्य चेतना, नैतिकता एव आदर्शात्मकता के आकाश मे विचरण करती है, परन्तु रीतियुगीन सौन्दर्य चेतना धरती पर के सौन्दर्य-वैभव का लक्षण और आकलन करने वाली है। अपनी उत्कृष्टता मे वह किसी प्रकार कम नही, परन्तु उत्कृष्ट होती हुई भी वह अलौकिक सौन्दर्य नही, लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करती है। यह सौन्दर्य-चित्रण हमारे अनुभव में उतर कर बोलता है। मतिराम लिखते है :—

कुंदन को रंग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गोराई।
आंखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासनि की मधुराई।
को बिनु मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लखे अँखियान लुनाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नीरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरौ निकरै ह्वै निकाई॥

अथवा जब आभूषणों को देह के सहज वर्ण-सौन्दर्य की तुलना में तुच्छ ठहराते हुए लिखते है :—

पहिरि न भूषण कनक के, कहि आवत एहि हेत।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत।
मानहु विधि तन अच्छ छबि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछन को कियो, भूषन पायंदाज॥

तब हम रूप लावण्य का अनुभव करते हैं । इस प्रसंग में रीतिकाव्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है । अंग-अंग का वर्णन, प्रकृति और नारी की छवि को जिस बारीक सुधराई से रीतियुगीन काव्य में प्रस्तुत किया गया है, वह अप्रतिम युगीन उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए । नेत्र, होठ, मुख, कान, कंठ, हाथ, कटि, नितम्ब, अंगुली, एँड़ी, प्रत्येक का सौन्दर्य दर्शनीय है । बिहारी और मतिराम द्वारा वर्णित पैर और ओंठ की ललाई का वर्णन दो दोहों में देखिए । बिहारी कहते हैं—

पग पग मग अगमन परति, चरन अरुन द्युति झूलि ।
ठौर ठौर लखियत उठे, दुपहरिया से फूलि ।।
अरुन वरन करनि न पर्‌यै अमल अधर दल माँझ ।
कैधौं फूली दुपहरी, कैधौं फूली साँझ ।।

इस प्रकार रीतिशृंगार काव्य के अन्तर्गत हम सौन्दर्य का मनोरम चित्रण पाते हैं । सौन्दर्य का यह चित्रण स्थिर चित्रण नही, वरन् भाव-चेष्टा-युक्त गतिमय रूप है । कुछ छन्द इस बात को सिद्ध कर देंगे :—

झलके पख बनजात से, झके मग बनजात ।
अहह दई जलजात से, नैननि तें जल जात ।।
नैननि मढ़ि चित चढ़ि रही, वह स्यामा वह साँझ ।
झाँकी दै ओझल भई, झकि झरोखे माँझ ।। (रामसहाय)

अनुप्रास की छटा, शब्द-योजना दृष्टव्य है ।

इसी प्रकार प्रकृति का वर्णन इसी शैली में देखिये :—

झीने झर झुकि झुकि झमकि, झलनि झाँपि झकझोर ।
झुमड घुमड बरसत सघन उमडि घुमडि घन घोर ।। (विक्रमसाहि)

इतना सब रूप चित्रण करते हुए भी समस्त सौन्दर्य जो इन कवियों की चेतना में समाया था, उसका वर्णन ये नही कर पाते । जब बिहारी स्वयं लिखते है कि :—

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।।

तब फिर और कवियों की क्या बिसात है ?

रूप-सौन्दर्य-चित्रण की विशेषता के साथ-साथ ही इस धारा के कवियों की रचनाओं में घटनाओं और चेष्टाओं के माध्यम से भाव-चित्रण की अद्भुत विशेषता विद्यमान है । किस चित्रण से कैसे भाव का संकेत करेंगे, इसका अनुमान लगाना कठिन है, पर ये चित्रण इतने सूक्ष्म सुकुमार और मर्मस्पर्शी है कि सहृदय ही इनका पूर्ण प्रभाव हृदयंगम कर सकता है । कुछ छन्द यहाँ दिये जाते हैं—

अपने अपने सुष्ठि गेहनि में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री !
अँगनान में चींजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जाँव पै री ।।
कहै ठाकुर दोऊ न की रुचि सों रँग ह्वै उमड़े दोउ ठाँव पै री ।
सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नंद गाँव पै री ।।

इस छन्द में घरों में सनेह की नाव पर चढना, कारी और गोरी घटाओं का बरसना जैसे पद कितने भाव प्रवण है । वर्षा के ही प्रसंग का एक छन्द नागरी दास का देखिये :—

भादों की कारी अँध्यारी घटा झुकि बादर मंद फुही बरसावै ।
राधिका आपनी ऊँची अटा पैं छकी रसरीति मलारहिं गावै ।।
ता समैं मोहन के दृग दूरि ते आतुर रूप की भीख यों पावै ।
पौन मया करि घूँघट टारे दया करि दामिनी रूप दिखावैं ।।

रूप की लालसा से प्यासे कृष्ण के ऊपर प्रकृति भी किस तरह दया करेगी इसे कवि को छोड़कर और कौन समझ सकेगा । संयोग के साथ ही इन कवियों के वियोग-जनित भाव भी कम मार्मिक नहीं । 'देव' का एक छन्द इस प्रसंग में इस प्रकार है :—

भेज भये विष, भावै न भूख न, भूखन भोजन की कछुई छी
"देवजू" देखे करै बध सों मधु, दूध सुधी, दधि माखन छी छी ।

चंदन तौ चितयो नहिं जात, चुकी चित माँहि चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यों सूल, सिला सम सजे बिछौननि बीछी जनु बीछी ।।

इसी प्रकार के मतिराम, घनानंद, पद्माकर आदि कवियों के अनेक छन्द हम देख सकते है ।

भाव-सौन्दर्य के समान ही रीतिशृंगार धारा का काव्य कल्पना के वैभव से समृद्ध है । बड़ी सटीक मनोरम कल्पनायें इन कवियों के अप्रस्तुत विधान को अलंकृत करती हैं । बिहारी, मतिराम, देव, दास, पद्माकर आदि इस कल्पना वैभव के विशेष धनी है । पर इनके अतिरिक्त अन्य कवि भी है जिनकी कल्पना बड़े सुन्दर रूप में प्रकट होकर भाव, विचार या तथ्य को हमारे सामने प्रत्यक्ष करती है । इस प्रसंग मे अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नही, क्योंकि अपनी कल्पना के लिये ये कवि अति विख्यात है । केवल दो छन्द उदाहरण-स्वरूप दे रहे है । एक चिन्तामणि का सीता-स्वयवर का छन्द इस प्रकार है -

हंसन के छौना स्वच्छ सोहत बिछौना बीच,
होत गति मोतिन की ज्योति जोन्ह जामिनी ।
सत्य कैसी ताग सीता पूरन सुहाग भरी,
चली जयमाल लै भराल गज गामिनी ।
जोई उर बसी सोई मूरति प्रतच्छ लसी,
चिन्तामनि देखि हँसी सकर की स्वामिनी ।
मनो सरच्चन्द, चन्द मध्य अरविन्द
अरविन्द मध्य विद्रुम विदारि कढ़ी दामिनी ।।

इस छन्द मे हँसी की बड़ी बारीक कल्पना की गई है । 'देव' की एक स्थूल कल्पना का स्वरूप इस छन्द मे देखिये .- -

माखन सों मन दूध सो यौवन, है दधि ते अधिकौ डर ईठी ।
जा छवि आगे छपाकर छाछ समेत सुधा बसुधा सब सीठी ।।
नैनन नेह चुवै कवि 'देव' बुझावत बैन वियोग अंगीठी ।
ऐसी रसीली अहीरी अहै कहौ क्यों न लगै मन मोहनै मीठी ।।

अतः स्पष्ट है कि इन कवियों की कल्पना नवीन-नवीन उपमानों की सृष्टि में लगी रहती थी ।

रीतिशृंगार काव्य-धारा की एक प्रमुख विशेषता उक्ति वैचित्र्य की है । विदग्ध चमत्कारिक, स्मरणीय, चुटीली अभिव्यक्ति रीतिकाव्य की प्रमुख देन है । उक्ति की विशिष्टता ही काव्य को प्रभावशाली बनाती है । इस कसौटी पर रीतिकाव्य बड़ा खरा उतरता है । इस उक्ति विशेष के लिए दोहा, सवैया, कवित्त जो तीन छन्द इन कवियों ने चुने थे, वे भी अतीव उपयुक्त बैठते हैं । इन छन्दों के अन्तिम चरण मे तो जैसे सूक्ति ढलकर निकल आती है । इस प्रसंग में और अधिक न कहकर केवल कुछ चुभती हुई वैचित्र्यपूर्ण उक्तियो का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा--

जब जब वै सुधि कीजिये, तब तब सब सुधि जाँहि ।
आँखिनु आँखि लगी रहैं आँखै लागति नाँहि ।।
कागद पर न लिखत बनत, कहत सँदेस लजात ।
कहियै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात ।।
दृग अरुझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।। (बिहारी)

चीगुनौ रंग चढ़्यो चित में चुनरी के चुचात तला के निचोरत ।
मूरति जो मनमोहन की मनमोहनी के थिर ह्वै थिरकी सी ।।
देव 'गुपाल' को नाम सुने सियराति सु वा छतिया छिरकी सी ।
पूरन प्रीति हिये हिरकी खिरकी-खिरकीन फिरै फिरकी सी ।।

बड़े बड़े नैननि सों आँसू भरि भरि ढरि,
गोरो गोरो मुख आजु ओरोसो बिलानो जात ।
अब लगी आँखिन ही पूतरी कसौटिन में,
लागी रहै लील दाकी सोने सी गोराई की ।। (देव)

कबहूँ वा विलासी सुजान के आँगन सों अंतुवान को लै बर सों ।। घनानंद
"वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अँखियान लुनाई ।"
आँखिन ते गिरे आँसू के बूँद सुहास गयो उड़ि हँस की नाई ।। मतिराम

इस प्रकार की असंख्य स्मरणीय सरस चुटीली उक्तियों से रीतिकाव्य परिपूर्ण है । इनमें से किसे चुना जाय और किसे छोड़ा जाय, यह समस्या है ।

हिन्दी साहित्य का यह रीतिशृंगार काव्य उसकी निजी सम्पत्ति है । इस काव्य सम्पत्ति में संस्कृत को छोड़कर कदाचित् ही किसी अन्य भाषा का साहित्य हो, जो हिन्दी की समता कर सके । अतः हमें आज यांत्रिक झनझनाहट के लौह-युग में अपने पूर्वगामी युग के साहित्य की स्वर्णसम्पत्ति एवं रत्नराशि का मूल्य भली प्रकार समझ कर उसे सुरक्षित रखना चाहिए । यह काव्य-विभव हमारी सौन्दर्य-चेतना का विकास कर, शब्द-चयन की प्रतिभा को जगाने वाला है । यह उपेक्षणीय नही, वरन् अभिनंदनीय है । हमें इस पर गर्व है ।

पुनर्मूल्यांकन

हिन्दी का रीतिकालीन साहित्य उसका उत्तर मध्ययुगीन साहित्य है जो सामान्यतः सं० १७०० से लेकर स० १९०० विक्रमी तक निर्मित हुआ । उस समय रीतियुगीन साहित्य और विशेष रूप से रीतिकाव्य को उत्कृष्ट स्थान प्राप्त था । रीतिकाव्य साहित्यिक दृष्टिकोण रखने वाले काव्य-रसिकों के विचार से काव्य की विशुद्ध धारा है जिसके अन्तर्गत अन्य किसी विशिष्ट वैचारिक या साम्प्रदायिक भावना का आग्रह नही है । उसके अन्तर्गत स्वच्छ काव्यात्मक प्रतिभा सौन्दर्य का मनोरम एव प्रभावी चित्रण प्रस्तुत करती दिखलाई देती है । इसीलिए दो-ढाई सौ वर्षो तक रीति-परम्परा के काव्य का विशेष सम्मान और महत्व रहा । न केवल राजदरबारो मे, वरन् जन-सामान्य के अन्तर्गत भी रीतिकाव्य ने सौन्दर्य-चेतना और कलात्मक दृष्टि-कोण के विकास करने में सहायता पहुँचाई ।

आधुनिक युग के प्रवेश के साथ इस काव्य के सबन्ध में दृष्टिकोण बदला और रीतिकालीन काव्य विशेष रूप से रीतिकाव्य पर अनेक प्रकार के दोषा-रोपण किए गए और यह काव्य नितान्त हेय एव पतनोन्मुख काव्य कहा गया तथा उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जागृत किया गया । इसकी प्रतिक्रिया में दूसरा मत इस प्रकार का निर्मित हुआ कि वास्तव मे हिन्दी का रीतिकाव्य, ही उत्कृष्ट काव्य है । ये दोनों ही दृष्टिकोण राग-द्वेष की भावना से युक्त कहे

जा सकते है । अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि हम रीतिकाव्य का पुनर्मूल्याकन प्रस्तुत करे और यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करे कि इस काव्य का महत्व क्या है ? साथ ही यह भी जानने का प्रयत्न करें कि इसमें किन तत्वों की कमी है ।

रीतिकाव्य पर जो दोष लगाए जाते है,वे निम्नलिखित हैं—

(१) अश्लीलता ।

(२) समाज को प्रगति देने की अक्षमता ।

(३) आश्रयदाता की अतिशय प्रशसा ।

(४) चमत्कार-प्रियता ।

(५) रूढ़िवादिता ।

अश्लीलता की धारणा युग-सापेक्ष्य है । एक ही प्रकार की वस्तु या व्यक्त रूप एक युग मे अश्लील कहा जा सकता है और दूसरे युग मे नही । इसका प्रमाण हमे सस्कृत की अनेक रचनाओ को पढ़ने पर मिल जाता है । कविकुल गुरु कालिदास, भर्तृहरि, अमरुक तथा बाणभट्ट और मुक्तककार अनेक सस्कृत के कवि है जिनकी रचनाओं मे नारी-शरीर के अंगों का तथा भावो का ऐसा वर्णन है जो उस समय अश्लील नही था, पर आज वह अश्लील समझा जाता है । यही दशा मध्ययुग के काव्यगत वर्णनो के प्रसग म भी कही जा सकती है जो उस समय अश्लील नहीं थे, आज अश्लील समझे जाते है । भक्तियुग मे ही सूरदास, नन्ददास, विद्यापति, जायसी, सेनापति आदि के अनेक वर्णन ऐसे है जो रीतिकालीन वर्णनो से अधिक अश्लील कहे जा सकते है । आधुनिक युग मे भी इस प्रकार के वर्णनो का अभाव नहीं है । प्रकृतिवादी और प्रगतिवादी काव्यो तक मे ऐसे वर्णन मिलते है जो हेय और अश्लील है । ऐसी दशा मे रीतिकालीन सौन्दर्य-चित्रण के प्रसग मे और विशेष रूप से नख-शिख सौन्दर्य चित्रण में कतिपय अगो का यदि ऐसा वर्णन मिलता है जो आज अश्लीलता की सीमा मे आ जाता है तो उसके आधार पर हम समस्त काव्य को लांछित करें, यह उपयुक्त नही ।

इसी प्रकार शारीरिक अगो का वर्णन एक देश में अश्लील हो सकता है दूसरे देश मे नहीं । दक्षिण-पूर्वी देशो मे अनेक स्थलो पर स्त्रियों के लिए कमर

से ऊपर का समस्त खुला या केवल आभूषण युक्त अंग-प्रत्यंग वहाँ के लिए अश्लील नहीं है, जबकि अपने देश के नागरिक समाज मे उसे अश्लील माना जाता है । इसी प्रकार चित्रकला और मूर्तिकला के अन्तर्गत पुरुष और नारी के अनावृत रूप भी अश्लील नही माने जाते । ऐसी दिशा में यदि रीतिकालीन कवि अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का निरूपण करके अपनी कल्पना द्वारा उस सौन्दर्य को और भी अधिक उत्कर्ष प्रदान करना चाहता है तो इसमे उसे लांछित नहीं किया जा सकता । इसके साथ ही साथ इस प्रसंग मे एक और भी बात है जिसका सम्बन्ध प्रचलन और परम्परा से है । कभी-कभी एक ही पदार्थ या भाव का द्योतक शब्द एक भाषा मे अश्लील नही है पर दूसरी मे अश्लील माना जाता है । अंग्रेजी के ब्रेस्ट, किस, एम्ब्रेस आदि शब्द हमें अश्लील नहीं लगते है, पर इनके हिन्दी पर्याय कुच, चुम्बन, आलिंगन आदि सामान्यतः अश्लील समझे जाते है । ऐसी दशा मे अश्लीलता युग, देश और प्रसंग-सापेक्ष वस्तु है और उसके आधार पर सामान्यतः समस्त रीतिकालीन काव्य पर अश्लीलता की छाप लगाकर उसे बहिष्कृत नहीं कर सकते ।

हाँ, इस प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि रीतिकाव्य में कुछ ऐसे वर्णन है जो कामशास्त्र के आधार पर किए गए है और वे हमारी निम्न वासनाओं को उभाड़ने वाले है । ऐसे वर्णन चाहे जिस काव्य में हों, सामान्यतः वर्जित ही माने जायेंगे । यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इस प्रकार के वर्णन की परम्परा भी रीतिकाव्य मे संस्कृत-काव्य से आई है ।

समाज को प्रगति की प्रेरणा न दे सकने का दूसरा दोष इस युग के काव्य पर लगाया जाता है। यह लांछन भी बहुत ठीक नहीं है । जहा तक रीतिकाव्य का प्रश्न है यह स्पष्ट है कि उसका प्रमुख क्षेत्र शृंगार रहा, परन्तु रीतिकाव्य के अन्तर्गत भी वीरता, भक्ति और नीति से युक्त रचनाएँ मिलती है । शिवराज भूषण, रामचन्द्राभरण, बिहारी सतसई आदि इसके प्रमाण है जिनमें वीरता, भक्ति, नीति आदि विषयो से सम्बन्धित रचनायें है । यह बात रीतिकाव्य के सम्बन्ध में है । परन्तु इसके अतिरिक्त उस युग में अन्य काव्य-धाराएँ भी प्रवाहित थी जिनके अन्तर्गत आध्यात्मिक तथा लौकिक जीवन को प्रेरित करने की शक्ति थी । यह नही कहा जा सकता कि रीति युग का काव्य जीवन और

उसकी प्रगति से नितान्त विमुख था। तथ्य यह है कि यह काव्य पूर्ववर्ती भक्ति युग के काव्य से अधिक लोक-जीवन विमुखी है।

भक्तिकाव्य का वास्तव में बहुत अधिक विस्तार इस युग में हुआ। संत साहित्य के अनेक पंथ इस युग में अधिक प्रचलित हुए। सुन्दरदास, रज्जब, यारी, पलटू, प्राणनाथ,जगजीवनदास, चरनदास, दरिया, शिवनारायण, तुलसी साहब हाथरस वाले आदि इस युग के संत कवि हैं। निर्गुणोपासना की सूफी काव्यधारा के भी बहुसंख्यक कवि रीति युग में हुए। इनमें से अधिक प्रसिद्ध कवि हैं जानकासिम शाह, नूरमुहम्मद, शेख मिसाद आदि।

संत काव्य धारा मूलतः संयम और साधना पूर्ण जीवन पर बल देने वाली है और यह कहा जा सकता है कि भारतीय जीवन में चारित्रिक बल का मूल श्रोत संतों से ही प्राप्त होता है। जब इस प्रकार की विचारधारा के कवि इस युग में हैं, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस युग का काव्य जीवन की प्रगति से रहित है।

सगुण भक्तिधारा के अंतर्गत कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति से सम्बन्धित असंख्य रचनाएँ इस युग में की गईं। कृष्णभक्ति के अन्तर्गत वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय और गौड़ीय सम्प्रदाय इन चारों सम्प्रदायों की बहुविधि रचनाएँ इस युग की सुन्दर उपलब्धि के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए। इस परम्परा के अनेक उत्तम कवियों ने अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ हिन्दी साहित्य को प्रदान की। इनमें से प्रमुख है—ध्रुवदास, नागरीदास, चाचा हितहरि वृन्दावनदास, बख्शी हंसराज, ब्रजवासीदास आदि।

कृष्ण काव्यधारा के समान ही राम काव्यधारा के अन्तर्गत इस युग में अनेक कवियों ने ग्रंथ लिखे। रामोपासना के रसिक सम्प्रदाय का विस्तार इसी युग की देन है। इस धारा के कई प्रसिद्ध कवि रीतिकाल में वर्तमान थे। उनमें से कुछ प्रमुख हैं—गुरुगोविन्द सिंह, जानकी रसिकशरण, सरजूराम पंडित मधुसूदनदास, जनकराज किशोरीशरण सहजराम तथा रसिक बिहारी। इनके अतिरिक्त रीवां नरेश महाराजा जयसिंह, महाराजा विश्वनाथ सिंह, और महाराजा रघुराजसिंह ने भी रामकाव्य से सम्बन्धित सुन्दर ग्रंथों की रचना की। ऐसी दशा में इन भक्तिप्रधान रचनाओं के आधार पर यह कहा जा

सकता है कि उस युग की मान्यता के अनुसार रीतिकालीन काव्य में जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को प्रेरणा देने वाले ग्रंथों की रचना भी प्रचुर मात्रा में हुई। भक्तिकाल की सभी धाराओं का विकास इस युग में हुआ।

जीवन के लौकिक पक्ष को प्रेरित और प्रगतिमान करने वाला साहित्य भी इस युग में प्रचुर मात्रा में लिखा गया। इस बात की पुष्टि में हम इस युग के वीर और नीति काव्य की रचनाओं की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जहाँ वीर काव्यों में ओज और उदात्तता के साथ वीरता की भावना संचालित होती है वहीं नीति काव्य में जीवन के कटु एवं मधुर अनुभवों के आधार पर उपयोगी और वांछनीय बातें कही गई है। ये दोनों ही काव्य-धाराएँ रीति-काल में व्यापक विस्तार प्राप्त किए हुए हैं। वीर-काव्य के अन्तर्गत विशेष प्रसिद्ध कवि हैं---भूषण, मान, लाल, श्रीधर, सूदन, हरिकेस, जोधराज और चन्द्रशेखर वाजपेयी। इनकी रचनाएँ अत्यंत प्रसिद्ध हैं और इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस युग में हिन्दी के वीर काव्य का उदात्त स्वरूप देखने को मिलता है।

रीति युग का नीति काव्य भी कम समृद्ध नही है। अनेक कवियों ने जीवन को दिशा-निर्देश करने वाले सुन्दर मुक्तक तथा दुर्नीति और दुराचरण पर प्रहार करने वाले हास्य-व्यंग्य काव्य लिखे है। यह नीति और हास्य-व्यंग्य काव्य इस युग के सामाजिक निर्माण और प्रगति को सँभालने वाला काव्य है। व्यंग्य और भड़ौआकार बेनी कवि इसी युग में हुए जिन्होंने अनुदारता, आडम्बर आदि पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। इसी समय खटमल-बाइसी' नामक हास्यप्रधान काव्य लिखने वाले प्रीतम कवि भी हुए। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक हास्यकार कवि इस युग में मिलते हैं जो मूलतः नीतिकार हैं। घाघ, भड्डरी, बैताल आदि इसी प्रकार के कवि है। इनकी रचनाओं में जीवन के कटु-मधुर अनुभवों का वर्णन तो है ही, साथ ही साथ समाज में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, यह भी उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। कई लोगों ने अन्योक्तियों द्वारा सुन्दर और मार्मिक नीतिकाव्य प्रस्तुत किया है। इन सब पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस युग के काव्य में भी समाज को आध्यात्मिक और लौकिक दोनों ही प्रकार की प्रगति प्रदान

करने की क्षमता है ।

तीसरा दोष जो इस युग के काव्य पर लगाया जाता है वह है आश्रयदाता की अतिशय प्रशंसा करना । यह दोष भी आंशिक रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है और उस युग के लिए आश्रयदाता की प्रशंसा, कला और काव्य के संरक्षण के लिए किन्ही अंशों मे आवश्यक भी थी । काव्य और कला के लिए किसी न किसी प्रकार का संरक्षण आवश्यक होता है । रीतिकाल के लिए यह विशेष रूप से सत्य था । उस समय यदि कविता, संगीत, चित्र आदि कलाओं को राजाश्रय प्राप्त न होता तो इनका विकास तो रुक ही जाता, ये सुरक्षित भी नही रह सकती थी । अतएव थोड़ी बहुत प्रशंसा के द्वारा उस समय के कवियों और कलाकारों ने राजाओं और सामन्तो से कलात्मक और साहित्यिक विकास का परिपोषण प्राप्त किया । इतना ही नही, अनेक राजाओं और सामन्तों के हृदयों में भी काव्य और कला की सृजन-स्फूर्ति जागृत की । राजस्थान और विन्ध्यप्रदेश के कई शासक इसके प्रमाण है । अतएव आश्रयदाता की जो थोड़ी बहुत प्रशसा मिलती है, वह स्वाभाविक एव वांछनीय है ।

इसके अतिरिक्त यह प्रशसा नितात असत्य भी नही है । रीतिकवियों ने जिन राजाओं और आश्रयदाताओ की प्रशसा की है, वे उसकी पात्रता भी रखते है । यह मात्र झूठी प्रशसा नहीं, वरन् गुणों और योग्यता की सराहना है । यह भी सत्य है कि कवियों ने बहुत थोड़े ही अंश में आश्रयदाताओ की प्रशंसा की है । केशव, बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर आदि कवियों के द्वारा इनकी विशाल काव्य-रचना के बीच कुछ ही छद ऐसे है जो इनके आश्रय दाताओं की प्रशसा से सम्बद्ध है और इन छदो में यह देखा जा सकता है कि उनके द्वारा सद्गुणों को प्रेरणा ही मिलती है ।

यदि निष्पक्षता से विचार किया जाय तो रीतिकवियों ने काव्यशास्त्रीय परिपाटी को अपना कर आश्रयदाताओं की अतिशय और दीर्घ प्रशंसा से अपने को मुक्त कर लिया था । इसीलिए सामान्यतः रीतिकाव्य के अन्तर्गत भूमिका या प्रस्तावना रूप में अथवा ग्रंथ के समापन के समय ही प्रशंसात्मक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं । काव्य-रचना के प्रधान भाग में अलंकार, रस, ध्वनि अथवा किसी अन्य महापुरुष के जीवन का विवरण प्राप्त होता है । अलंकार, रस,

नायक-नायिका भेद आदि के लक्षण उदाहरण की परिपाटी से इन कवियों ने आश्रयदाता के चरित्र को लिखने की बाध्यता मे अपने को मुक्त कर लिया। यह बात सराहनीय है। इतना ही नही, उस युग के प्रतिभा-संपन्न कवि ऐसे थे जिनका व्यक्तित्व आश्रयदाताओं और शासकों के व्यक्तित्व से भी ऊँचा था। प्रतिभा-सम्पन्न होने के साथ-साथ वे स्वाभिमानी भी थे। उन्होंने अपने व्यवहार और कृतित्व से कवि और कविता दोनों के ही गौरव को उच्चता प्रदान की। केशव, चिन्तामणि, भूषण, बिहारी, देव, दास, पद्माकर आदि ऐसे ही कवि थे जिनको अपने दरबार में लेने के लिए अनेक राजा और शासक उत्सुक तथा लालायित रहते थे। ऐसे कवियों के द्वारा जो कुछ प्रशंसात्मक उक्तियाँ मिलती है वे गुणों और कार्यों की सराहना मात्र हैं।

उस युग में काव्य के अन्तर्गत चमत्कार का विशेष महत्व था। वह दरबारों का युग था जहाँ तड़क-भड़क और चमत्कार प्रदर्शन विशेष रूप मे दिखलाई देता है। दरबार मे रहनेवाले और आने वाले कवियों और कलाकारों के मध्य अपने को बढकर सिद्ध करने के लिए चमत्कार आवश्यक था। चमत्कार पूर्ण वर्णन उनकी प्रतिभा-प्रदर्शन का एक मार्ग था। इसके परिणाम स्वरूप हमें रीति काव्य के अन्तर्गत चामत्कारिक रचनायें अधिक मिलती है जिनमे कला का एक वैशिष्ट्य प्राप्त होता है। यह सत्य है कि इनमे अनुभूति की अपेक्षा कलात्मक चमत्कार अधिक है, फिर भी अभिव्यक्ति को सौष्ठव प्रदान करने का प्रयत्न इन रचनाओं मे देखा जाता है। चामत्कारिक विशेषता को हम दोष के रूप मे नही देख सकते ; विशेष रूप से उस अलकरण और सजावट प्रधान काल मे इसे एक गुण के रूप में ही देखना चाहिए।

रूढ़िवादिता का दोष इस युग मे दिखलाई देता है। एक ही प्रकार के प्रसंगों और विषयो पर इस युग के कवियों ने अपनी रचनाएँ लिखी। ऐसी बात नही कि उनमें वैविध्य न हो, परन्तु परिपाटी-बद्धता उनमे अवश्य मिलती है। इस युग के कवि अपने लिए एक शुद्ध काव्य का मार्ग निकालना चाहते थे। अतएव परिपाटी का अनुगमन इस समग्र युग की विशेषता है और ध्यान से देखें तो थोड़े बहुत रूप में यह रूढ़िबद्धता सभी युगो के काव्य में दिखलाई देती है। इसी प्रक्रिया मे दो-एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि काव्य का नया मार्ग

निकालते हैं । धीरे-धीरे दूसरे कवि उसका अनुगमन करते हैं और उन कवियों की शब्दावली और परिपाटी को ग्रहण करते हैं । यही प्रक्रिया जब अधिक समय तक चलती है तब वह रूढ़ि जैसी लगने लगती है । पर यह परिपाटी-बद्धता किन्हीं न किन्ही अशो में सभी युगों के काव्य में परिलक्षित होती है । भक्ति काव्य, संत काव्य छायावादी, प्रयोगवादी आदि सभी काव्यों में यह बात थोड़े बहुत अंशो मे देखने को मिल जायगी जहाँ पद्धति, छंद, अप्रस्तुत विधान, और शब्दावली एक समान दिखलाई देती है । यह बात न केवल रीति काव्य के लिए, वरन् आधुनिक प्रयोगशील काव्य के लिए भी सत्य है।

इन दोषों के विश्लेषण और विवेचन के उपरान्त रीतिकालीन काव्य की कुछ विशिष्टताओं पर विचार करना भी आवश्यक है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रायः लोग यह समझते है कि रीतिकाल में केवल श्रृंगारिक रचनाएँ हुईं, यह एक भ्रमात्मक धारणा है । इस युग में सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का काव्य निर्मित हुआ । जो रीतिकाव्य के प्रणेता कवि थे उन्होने भी केवल श्रृंगारी कविता न लिखकर अन्य प्रकार की कविताएँ भी लिखी । बिहारी, देव, पद्माकर जैसे कवियों ने भी प्रचुर मात्रा में भक्ति एव नीतिपरक रचनाएँ की है । इनकी भक्ति और नीति सम्बन्धी रचनाएँ भी बड़ी उच्चकोटि की हैं । कुछ उदाहरण हम देख सकते है---

१. मैं देख्यो निरधार यह जग काँचों काँच सो ।
एकै रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ ।।
२. जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम ।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राचे राम ।। **–बिहारी**

३. जो मैं ऐसो जानतो कि जैहै तू विषय के संग ।
ऐ रे मन मेरे हाथ पाव तेरे तोरतो ।।
४. आजु लौं हौं केते नर नाहन की नाहीं सुनी,
नेह सो निहारि हारि वदन निहोरतो ।
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चितावननि मारि मुँह मोरतो ।

भारी प्रेम पाथर नगारो दै गरे मो बाँधि,
राधावर विरद के वारिधि में बोरतो ।। —देव

५. देव पद्माकर गोविन्द की अमित छवि,
शंकर समेत विधि आनँद सो बाढ़ो है ।
झिझिकत झूमत मुदित मुसकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सो आढ़ो है ।
पटकट पायँ होत पैंजनी झुनुक रंच,
नेक नेक नैनन तें नीरकन काढ़ो है ।
आगे नन्द राबी के तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठठुकत ठाढ़ो है ।।—पद्माकर

इसी प्रकार नीति-सम्बन्धी उक्तियाँ है ।

१. बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमान ।
भलो भलो कहि छोड़िए खोटे ग्रह जपदान ।।
२. रह्यो न काहू काम को सेत न कोऊ लेत ।
बाजू टूटे बाज को साहब चारा देत ।।— विहारी

३ सहअ सुभाय मुसुकायवो मनोहर है,
जगत प्रसिद्ध आठौं सिद्धि को सरसिवो ।
दिल सों दया सों देखिबोई देव दर्शन है,
रीझिबो रसायन है पारस परसिबो ।। --पद्माकर

इससे स्पष्ट होता है कि रीतिकाव्यकार कवियों ने भी अपने अनुभवों को विविध रूपों में व्यक्त किया था, उन्होंने केवल श्रृंगारपूर्ण रचनायें ही नही कीं ।

वास्तविकता तो यह है कि रीतिकालीन कवियों का दृष्टिकोण मूलत: ऐहिक था, भक्तिकालीन युग की भाँति आध्यात्मिक नही । इसीलिए इन्होंने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत जीवन में व्याप्त आशाओं, आकांक्षाओं, लालसाओं रूप, तृष्णा, सौन्दर्य, प्रेम, विलास, त्याग, खीझ, साहस आदि मानव-वृत्तियों का यथातथ्य वर्णन किया है । इनके वर्णन में जो अत्युक्ति या अतिशयोक्ति है

वह प्रभावोत्पादन के लिए । इस युग के साहित्य के अन्तर्गत अनेक ऐसे ग्रंथ भी मिलते है जो लोक-जीवन के वास्तविक अनुभव और ज्ञान को प्रकट करते है । यह अनुभव और ज्ञान विविध विषयो का है जैसे—राजनीति, कामशास्त्र, शालिहोत्र (पशुचिकित्सा) ज्योतिष, सामुद्रिक-शास्त्र, भोजन-शास्त्र, सुरापान, मैत्री, संगीतशास्त्र उद्यान-शास्त्र आदि । रीतिकालीन साहित्य के इस पक्ष का प्रचार कम हुआ इसलिए प्रायः हम यह समझते है कि इस युग के काव्य दृष्टि-कोण एकांगी है, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नही । जीवन के विविध पक्षो से सम्बन्धित रचनाओ के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है ।

अवधूतसिंह ने सं० १८४४ मे सुरापचीसी की रचना की । इसमें सुरा और सुधा को एक ही कोटि का ठहरा कर सुरा के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण से विरोध के भाव को हटाया । उसका एक छद निम्नांकित है—

एकाई उदरते प्रकट है सुधा औ सुरा,
ऐकै रूप, एकै गुन सबन बनाई है ।
अजर अमर सुधा करत प्रसिद्ध,
सुरा सुर नर मुनि देव जोनि समुझाई है ।
सुरा मधुराई देवलोक में अलभ्य,
सुरा पटरस तीनो लोक सुलभ सदाई है ।
सुरन सुहाई गुन स्वाद गरुआई,
याते सुधा सुरा नामके पुरानन कहाई है ।

इस छंद से उस युग की ऐहिकतापरक दृष्टि स्पष्ट होती है । इसी प्रकार हुक्के की प्रशंसा में लिखा हुआ एक छद देखिए—

तौर ते याके न तौर है और,
सुवास ते याके त और सुवास है ।
याके अनादर ते न अनादर
आदर याके न आदर कासु है ।
धीरता धीरज साहस सोल
उदारता श्री प्रभुता को निवासु है ।

अष्टउ सिद्धि नवउ निधि के सुख
हुक्कहि देखत पावत आसु है ।

उपर्युक्त हुक्का-प्रशसा को पढ़कर इतना तो कम से कम जाना ही जा सकता है कि आज के यथार्थवादी युग मे भी सिगरेट के विज्ञापन मे आए दृष्टिकोण की अपेक्षा यह अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण है । व्यग्य और हास्य के साथ इसके लिखने वाले की सच्ची आस्था की प्रशसा करनी ही पड़ती है ।

इसी प्रकार अली मुहिब खा प्रीतम ने 'खटमल बाइसी' लिखी और हरिनाथ ने विभिन्न जातियों के द्विजों को चिड़ियाखाना बनाया । किसी कवि ने अदानी के दान की प्रशसा यहाँ तक की कि उसे आठों पहर देनेवाला सिद्ध किया ।

उदाहरण इस प्रकार है—

पौर के किवार देत, धरै सब गारी देत,
साधुन को दोष देत, प्रीति न चहत है ।
माँगने पै ज्वाब देत, बात कहे रोष देत,
लेत देत भाँज देत ऐसे निबहत हैं ।
बागेहू के बन्द देत बोरन की गाँठ देत
परधन गाढ़ि देत, काम में रहत है ।
ऐसे पै सबैई कहैं लाला कछु देत नाहीं,
लाला जू तौ आठौ जाम देत ही रहत हैं ।।

इस युग के काव्य मे जीवन के यथार्थ अनुभव और अनुभूतियो का चित्रण हमे मिलता है । भाव और मनोवृत्तियो के प्रसग मे यह एक बात देखने को अवश्य मिलती है कि कवि युवावस्था के भावो का ही विशेष रूप से चित्रण करता है जिनके अन्तर्गत वह अभिलाषा, खीझ, प्रेम आदि का बड़ा ही सटीक चित्रण करने में सफल हुआ है । एक ही व्यक्ति के रूप में प्रभाव से उत्पन्न विभिन्न लोगों के मनोभावो का सकेत मतिराम के एक दोहे मे इस प्रकार किया गया है ।

जानति सौति अनीति है, जानत सखी सुभीति ।
गुरुजन जानत लाज है, प्रीतम जानत प्रीति ।।

इसमें रूपवती नारी के सौन्दर्य और व्यवहार एक साथ ही सौति के लिए अनीति, सखी के लिए सुनीति गुरुओं के लिए लज्जा और प्रिय के लिए प्रीति का रूप धारण करते हैं।

आन्तरिक भावों को चतुराई से कहकर भी व्यक्त किया जाता है। सुकुमार इंगितों और चेष्टाओं द्वारा इसका चित्रण करने वाला बिहारी का दोहा प्रसिद्ध है—

बतरस लालच लाल की,मुरली धरी लुकाय।
सौह करैं, भौंहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय।।

इस प्रसंग में पद्माकर का निम्नांकित छंद दृष्टव्य है—

गो-गृहकाज गुपालन के कहि देखिये की कहूं दूरि कै खरौ।
माँगि बिदा लई मोहिनी सों 'पद्माकर' मोहन होत सबेरौ।
फेंट गहि न गहि बहिनाँ न गरो गहि गोविंद गौन ते फेरौ।
गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गोपाल की गैल में गेरौ।।

रीतिकाव्य में विविध रूपा सूक्ष्म मनोवृत्तियों का समावेश है। वे अपने सहज और मार्मिक रूप में साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। इस दृष्टि से यदि हम रीति काल के साहित्य का मूल्यांकन करें तो इसके रचयिता हमारी श्रद्धा संवलित भावनाओं के अधिकाधिक अधिकारी सिद्ध होंगे।

कवियों के भाव-चित्रण की स्वच्छन्दता के साथ-साथ यह भी सत्य है कि उस युग में जीवन अनेक प्रतिबंधों और मर्यादाओं से बँधा हुआ था। जहाँ तक सामाजिक प्रतिबन्धों का प्रश्न है उन पर उस युग के संत-साहित्य में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, परन्तु इस युग के रीति काव्य में वैयक्तिक और पारिवारिक प्रतिबंधों के कारण जो मनोदशा थी उसका कहीं-कहीं बड़ा मार्मिक और विलक्षण चित्रण हुआ है। ऐसे छंद हैं जिनमें प्रेयसी अपने प्रिय को गाय दुहने, या या खोए हुए बछड़ों को अपने साथ ढूँढ़ने का आग्रह करती है, नदी के किनारे पानी से भरे घड़े को उठाने का अनुरोध करती है और कहीं पत्नी पति के साथ खेत पर काम करने के लिए जाने को आतुर होती है। ये सब भावनाएँ घर और परिवार के बीच प्रिय या पति से मिल सकने के प्रतिबंधों और कठिनाइयों

ः कारण है । इन प्रतिबंधों के कारण कहीं-कहीं ऐसी तीक्ष्ण भावनाओं का चित्रण हैं जहाँ स्त्री घर में आग लग जाने पर प्रसन्न होती है क्योंकि ऐसी दशा ां उसे अपने प्रिय के हाथों आग बुझाने के लिए पानी का घड़ा भर-भर कर ाने का अवसर मिलता है--

आगि लागि घर जरिगा बड़ सुख कीन ।
पिय के हाथ घइलवा भरि भरि दीन ।।

एसे चित्रण उस समय के सामाजिक जीवन का स्वरूप स्पष्ट करते हैं । ाह युग सामन्तवादी था, अतएव सामन्तवादी प्रवृत्तियों का चित्रण उस युग में मेलना स्वाभाविक है । परन्तु जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, उस ुग के सामन्तवादी परिवेश में साहित्य, कला और शास्त्र का संरक्षण अवश्य ुआ । अनेक प्रकार के भक्ति और संत-सम्प्रदायों को प्रोत्साहन मिला और इन पंथों और सम्प्रदायों के मंदिर और मठों का निर्माण हुआ ।

अनेक प्रकार के तंत्र और शास्त्रों की भी रचना हुई । साथ ही विविध चित्रकला-शैलियों का विकास हुआ जिनका उपयोग अनेक धार्मिक और काव्य संबंधी ग्रंथों में किया गया । इसी प्रकार भारतीय संगीत कला का भी विकास ुआ और अनेक नई शैलियाँ खोज निकाली गईं । इन शैलियों के अनुरूप छंदों और गीतों की रचना हुई ।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि उत्कृष्ट कला और तंत्र का विकास बिना राजकीय संरक्षण के नही होता । विशेष रूप से कला के चमत्कारिक उत्कर्ष के लिए वैयक्तिक सराहना और संरक्षण अत्यंत आवश्यक है । तंत्र और कला की विलक्षण उपलब्धियाँ जनतान्त्रिक या समाज-शास्त्रीय शासन पद्धतियों के बीच उतनी नहीं पनपती जितनी सामन्तवादी या एकाधिकारवाली पद्धतियों के बीच । यही कारण है कि रीतियुग में जन सामान्य के जीवन के लिए चाहे अधिक कुछ न हुआ हो, परन्तु तंत्र और कला के प्रोत्साहन के लिए वह युग अधिक पोषक सिद्ध हुआ । अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि हम उस युग की रचनाओं को केवल वर्तमान युग के ही सन्दर्भ में न देखकर उस युग के भी सन्दर्भ में देखें जिसमें उनकी निर्मिति हुई । हमें उस समय के भी सन्दर्भ

की कल्पना करना चाहिये जब ऐसी कृतियों के लिए संभवतः कोई वातावरण मिल सकेगा ।

काव्य-सृष्टि के मूल में युग-चेतना, कवि-हृदय का संस्कार, उसका परिवेश तथा उसके सोद्देश्य चिंतन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सतत क्रिया-शील रहती है । कवि जीवन-दृष्टा बन कर जीवन-सृष्टा भी बनना चाहता है । उसकी अभिव्यक्ति की विविधता के रूपों में इसी यथार्थ एवं आदर्श की कहीं संघर्षमयी और कहीं समन्वयकारिणी प्रवृत्ति का निदर्शन होता चलता है । रीतिकालीन साहित्य का मूल्यांकन करते समय इन तथ्यों पर भी दृष्टिपात करना होगा । किसी युग विशेष की भूमिका के आग्रह में उस युग के साहित्य के प्रति न्याय नहीं किया जा सकता है ।

●

कवि-परिचय

आचार्य केशवदास

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य युग को अपनी प्रतिभा और प्रभाव से सर्वाधिक प्रभावित करने वाले कवि केशवदास हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य-रचना के लिए शुद्ध काव्य का मार्ग प्रशस्त किया। केशव जितने काव्य के क्षेत्र में सम्मानित थे, उतने ही राजकीय क्षेत्र पर भी प्रभावशील थे। ये ओरछा नरेश राजा इन्द्रजीत सिंह और वीर सिंह देव के समय में उनके काव्य-गुरु के रूप में रहे। केशव के वंशजों का मूलनिवास यद्यपि ब्रज प्रदेश माना जाता है, परन्तु कई पीढ़ियों से इनके पूर्वज ओरछा राज्याश्रय में रहे। वे मुख्यतः पुराण-कथा कहकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। संस्कृत की विद्वता और स्वाभिमानी संस्कार उनकी वंश-परम्परा के लक्षण थे। केशवदास भारद्वाज, गोत्रीय मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे। सनाढ्य ब्राह्मणों का उस समय अच्छा सम्मान था। केशव के पितामह पंडित कृष्णदत्त मिश्र ओरछा नरेश महाराज रुद्रप्रताप के आश्रित थे तथा केशवदास के पिता पंडित काशीनाथ मिश्र महाराज मधुकर शाह के समय में ओरक्षा राज्य मे रहे और उन्ही को पुराण-कथाएँ सुनाया करते थे। मधुकर शाह का समय अकबर का समय था। इनके पश्चात् उनके पुत्र रामशाह ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए। इन्हीं रामशाह के अनुज इन्द्रजीत सिंह थे, जिन्होंने केशवदास को बहुत अधिक सम्मानित किया था। इनके सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए केशवदास ने लिखा है :—

"भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग-जुग,
जाके राज केशवदास राज सो करतु है।"

महाराज इन्द्रजीत सिंह के आश्रित रायप्रवीण नामक वेश्या भी थी। इसी को काव्य-शिक्षा देने के लिए केशव ने 'कवि-प्रिया' की रचना की थी। कहते हैं कि एक समय अकबर ने ओरक्षा नरेश पर डेढ़ करोड़ रुपये का जुर्माना किया था। और राय-प्रवीण को भी माँगा था। जुर्माना माफ कराने और

की कल्पना करना चाहिये जब ऐसी कृतियों के लिए संभवतः कोई वातावरण मिल सकेगा ।

काव्य-सृष्टि के मूल में युग-चेतना, कवि-हृदय का संस्कार, उसका परिवेश तथा उसके सोद्देश्य चिंतन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सतत क्रिया-शील रहती है । कवि जीवन-दृष्टा बन कर जीवन-सृष्टा भी बनना चाहता है । उसकी अभिव्यक्ति की विविधता के रूपों में इसी यथार्थ एवं आदर्श की कही संघर्षमयी और कही समन्वयकारिणी प्रवृत्ति का निदर्शन होता चलता है । रीतिकालीन साहित्य का मूल्यांकन करते समय इन तथ्यों पर भी दृष्टिपात करना होगा । किसी युग विशेष की भूमिका के आग्रह में उस युग के साहित्य के प्रति न्याय नहीं किया जा सकता है ।

●

कवि-परिचय

आचार्य केशवदास

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य युग को अपनी प्रतिभा और प्रभाव से सर्वाधिक प्रभावित करने वाले कवि केशवदास हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य-रचना के लिए शुद्ध काव्य का मार्ग प्रशस्त किया। केशव जितने काव्य के क्षेत्र में सम्मानित थे, उतने ही राजकीय क्षेत्र पर भी प्रभावशील थे। ये ओरछा नरेश राजा इन्द्रजीत सिंह और वीर सिंह देव के समय में उनके काव्य-गुरु के रूप में रहे। केशव के वंशजों का मूलनिवास यद्यपि ब्रज प्रदेश माना जाता है, परन्तु कई पीढ़ियों से इनके पूर्वज ओरछा राज्याश्रय मे रहे। वे मुख्यतः पुराण-कथा कहकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। संस्कृत की विद्वता और स्वाभिमानी संस्कार उनकी वंश-परम्परा के लक्षण थे। केशवदास भारद्वाज, गोत्रीय मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे। सनाढ्य ब्राह्मणों का उस समय अच्छा सम्मान था। केशव के पितामह पंडित कृष्णदत्त मिश्र ओरछा नरेश महाराज रुद्रप्रताप के आश्रित थे तथा केशवदास के पिता पंडित काशीनाथ मिश्र महाराज मधुकर शाह के समय में ओरक्षा राज्य में रहे और उन्ही को पुराण-कथाएँ सुनाया करते थे। मधुकर शाह का समय अकबर का समय था। इनके पश्चात् उनके पुत्र रामशाह ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए। इन्हीं रामशाह के अनुज इन्द्रजीत सिंह थे, जिन्होंने केशवदास को बहुत अधिक सम्मानित किया था। इनके सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए केशवदास ने लिखा है :—

"भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग-जुग,
जाके राज केशवदास राज सो करतु है।"

महाराज इन्द्रजीत सिंह के आश्रित रायप्रवीण नामक वेश्या भी थी। इसी को काव्य-शिक्षा देने के लिए केशव ने 'कवि-प्रिया' की रचना की थी। कहते हैं कि एक समय अकबर ने ओरक्षा नरेश पर डेढ़ करोड़ रुपये का जुर्माना किया था। और राय-प्रवीण को भी माँगा था। जुर्माना माफ कराने और

राय प्रवीण को ओरछा में रखने का श्रेय आचार्य केशवदास को ही मिला था।

केशवदास की जन्मतिथि के सम्बन्ध में मतभेद है। परन्तु अनेक बातों पर विचार करने से उनकी जन्मतिथि सं० १६१८ वि० ठहरती है। केशवदास का जन्म वर्तमान मध्य-प्रदेश के अन्तर्गत ओरछा नगर में हुआ था। आज भी वहाँ के व्यासपुर मुहल्ले में केशवदास के भवन के भग्नावशेष मिलते है। केशव के बड़े भाई हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बलभद्र मिश्र थे। इनके पाँच पुत्र कुछ लोग मानते है। केशव की पुत्र-बधू भी कवयित्री थी, ऐसी जनश्रुति है। महाराज इन्द्रजीत सिंह ने केशव से गुरुदीक्षा ली थी—और इन्ही के संकेत पर केशवदास ने 'रसिक-प्रिया' की रचना की। इन्द्रजीत सिंह के उपरांत वीरसिंह देव ओरछा के राजा हुए, इन्होंने ही जहाँगीर की इच्छानुसार अबुलफजल का बध किया था। केशवदास ने 'वीरसिंह देव चरित' ग्रंथ इन्हीं की प्रशंसा में लिखा है। वीरसिंह विद्वान व्यक्ति थे और इन्होंने केशवदास को 'विज्ञान-गीता' लिखने की प्रेरणा भी दी थी। अंतिम समय में केशवदास गंगा के किनारे निवास हेतु काशी चले गए थे।

केशवदास ने रतनसेन की प्रशंसा में 'रतन बावनी' और जहाँगीर की प्रशंसा में 'जहाँगीर जस चंद्रिका' का प्रणयन किया था। इस प्रकार केशवदास का अकबर, जहाँगीर, बीरबल आदि—महत्वपूर्ण व्यक्तियों से सम्बन्ध था। केशवदास की मृत्यु सं० १६८० वि० के आस-पास हुई थी और इस प्रकार से ये गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। इतना होते हुए भी केशवदास की मूल प्रवृत्ति भक्तिकालीन न होकर रीतिकालीन है। केशवदास ने कुल मिलाकर दस ग्रंथों की रचना की, जिनका विवरण काल-क्रमानुसार इस प्रकार है:—

१. रतन बावनी (सं० १६३८) २. रसिक-प्रिया (सं० १६४८) ४. नख-शिख (सं० १६५७) ४. बारह मासा (सं० १६५७) ५. रामचन्द्रिका (१६५८) ६. कबि-प्रिया (सं० १६५८) ७. छन्दमाला (१५५९) ८. वीरसिंह देव चरित (सं० १६६४) ९. विज्ञानगीता (सं० १६६७) १०. जहाँगीर जस चन्द्रिका (सं० १६६९)। इन ग्रंथों में भक्ति, शृंगार तथा चरित-काव्य सम्मिलित हैं। इससे स्पष्ट है कि केशवदास ने अपने युग की सभी प्रवृत्तियों को लेकर रचना की।

साहित्यिक क्षेत्र में केशवदास की अत्यधिक प्रसिद्ध रचनाएँ रामचन्द्रिका,

कवि-प्रिया और रसिक-प्रिया है। रामचन्द्रिका के लिए कहा जाता है कि इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस से प्रेरणा लेकर इसकी रचना की और इसकी रचना बहुत शीघ्र हुई। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग है। इसके साथ ही साथ इसमें रस, अलंकार, गुण और दोष को स्पष्ट करने वाले बड़े अच्छे उदाहरण मिलते है। दोषों का परिचय कराने वाले ग्रंथ रामचन्द्रिका जैसे बहुत कम है। रामकथा को लेकर लिखी गई यह पुस्तक बाल्मीकि रामायण पर आधारित है। और इसमें राम को ईश्वर रूप में चित्रित किया गया है। परन्तु इसकी अपनी दो विशेषताएँ स्पष्ट है, एक तो राज दरबारों और ठाट-बाट के चित्रण की विशेषता और दूसरी, शब्दों के चमत्कारी प्रयोग की विशेषता। इसमें बहुत से ऐसे छन्द हैं, जिनके पाँच-पाँच अर्थ निकलते है, और ऐसे छन्दों के लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है—

कवि को दैन न चहै विदाई ।।
पूछै केशव की कविताई ।।

रामचन्द्रिका को महाकाव्य की कलेवरात्मक साज-सज्जा से युक्त करने का कवि-संकल्प सर्वत्र उभरता हुआ प्रतीत होता है। उसमें रामकथा साहित्य-जगत की अति ख्यात कथा है, सद्वंशी राम धीरोदात्त नायक है, रावण खल प्रवृत्ति का मूर्त रूप है। नाति दीर्घ, नाति लघु उनतालीस प्रकाशो (अध्यायो) में रामकथा-वर्णन के माध्यम से कवि फलचतुष्ट्य की सम्प्राप्ति की कामना को संजोता हुआ प्रतीत होता है। कथा-प्रसंग के अन्तर्गत आये हुये प्रकृति के उघरे-मुँदे हुए नाना चित्र सस्कृत की नाम-परिगणन प्रणाली का अनुकरण करते है और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि राजकीय वैभव के बीच रहने के कारण प्रकृति की रमणीय क्रीड़ास्थली से नितान्त दूर बैठा हुआ उसका नाम स्मरण मात्र कर रहा है। इसीलिए उषास्मित कानन, मकरन्दोत्सव मनाती हुई भ्रमरावलियाँ, लहाछेह वर्षा करती हुई सघन मेघमालाएँ, कल-कल निनादिनी ह्लादिनी पयस्विनी, वीचि-विकास करती हुई अनन्त जल-राशि, हिमाच्छादित मरकताभमंडित उत्तुंग शैल श्रेणियाँ, लुका-छिपी करता हुआ शरच्चन्द्र आदि अनेक प्राकृतिक दृश्य आचार्य केशव के लिए कोई आकर्षण नही रखते हैं। जीवन-चर्या के बीच सुख-दुख राग-विराग, हास-रुदन, ममता और त्याग, औदार्य और कृपणता, शौर्य एवं कायरता आदि न जाने कितने

स्वरूप हमारी भाव मंजूषा की पूर्णता को सिद्ध करते हैं। सहृदय कवि इन सब में रमता हुआ मधुपी की भाँति जीवन-रस का पान करता है और फिर अपनी अन्तश्चेतना के अनुरूप एक नवीन जीवन-मधु की सृष्टि करता है। पर केशव ऐसे अवसरों की उपेक्षा करते हुए पाये जाते हैं और वे अपने कथन-चातुर्य, उक्तिवैचित्र्य आदि के द्वारा अपने आचार्यत्व की ऐसी धाक जमाते हुए चलते है कि पाठक को बरबस उनके वाणी-विलास एवं बुद्धि-वैभव की सराह-नरा करते ही बनता है। उसका हृदय अपने रमने का स्थल न पा कर आगे बढ़-जाना ही श्रेयस्कर समझता है। पग-पग पर छंदों का परिवर्तन तथा उपमा, परिसंख्या, रूपक, भंग पद श्लेष तथा यमक अलंकार रसानुभूति में बाधा उत्पन्न करते हैं। पाण्डित्य-प्रदर्शन की यह अतिशयता महाकाव्य के भावात्मक सौन्दर्य को आच्छादित करती रहती है।

राजकीय आचार-परम्परा के अभ्यासी होने के कारण सम्वादों के प्रयोग में केशव को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। भाव-प्रकाशन की क्षमता एवं पूर्णता की दृष्टि से कथोपकथन की नाटकीय शैली को कवि ने अधिकांश स्थलों में अपनाया है। इस शैली में क्षिप्रता, घातप्रतिघात तथा व्यञ्जकता की अत्यधिक अपेक्षा होती है। केशव के संवादों में ये समस्त गुण विद्यमान है। अंगद-रावण संवाद का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

कौन के सुत ? 'बालि के,' 'वह कौन बालि', न जानिए ?
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।
'है कहाँ वह वीर ?' अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो ?, 'रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो।'

लव-कुश से युद्ध करते समय इन दोनों वीर बालकों से जो राम-लक्ष्मण तथा भरत-शत्रुघ्न से संवाद हुआ है वह कवि की प्रतिभा का परिचायक है। इस संदर्भ में कुछ पंक्तियाँ भी प्रस्तुत है—

भरत— **मुनि बालक हौ तुम यज्ञ करावौ।**
सु किधौ वर बाजिहिं बाँधन धावौ।
अपराध क्षमौ सब आशिष दीजै।
वर बाजि तजौ, जिय रोष न कीजै।

कुश— **बालक वृद्ध कहौ तुम काकों।**
देहनि कौ किधौ जीव प्रभा कों॥

है जड़ देह करै सब कोई ।
जीव, सो बालक वृद्ध न होई ।

कवि-प्रिया में कवि-शिक्षा का वर्णन है । इसके अन्तर्गत् केशवदास ने वर्णन-पद्धति और अलंकार का मौलिक रूप मे निरूपण किया है । इसमें इनका काव्य-शास्त्रीय ज्ञान प्रकट होता है । रसिक-प्रिया में रसों का विवेचन है । इनके रसों का विवेचन भी मौलिकता रखता है । इसमें प्रत्येक रस के प्रच्छन्न और प्रकाश करके दो भेद दिए गये है । कविता की दृष्टि से कविप्रिया और रसिकप्रिया दोनों ही ग्रंथ उत्तमकोटि के हैं । वास्तव में ये दोनों ग्रंथ केशव को हृदयहीनता के आरोप से मुक्त कराने की क्षमता से पूर्ण है । इनके आधार पर केशव को रसिक, कल्पनाशील एवं उच्चकोटि का कवि निश्चित रूप से कहा जा सकता है । इनकी भाषा प्रांजल और सरस है । इन्हीं के आधार पर केशव का प्रभाव समस्त रीति-काल पर छाया रहा और परवर्ती रीतिकवि केशव की रचनाओं को पढ़कर ही काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करते थे । शुद्ध काव्य का मार्ग प्रशस्त करने के कारण केशव का महत्त्व रीतिकाल में अक्षुण्ण है ।

सेनापति

कविवर सेनापति की जीवनी के सम्बन्ध में अधिक सामग्री नही मिलती । जो कुछ भी सूचना ज्ञात है, वह इनकी रचना के आधार पर ही है । सेनापति ने अपने ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' में अपना परिचय दिया है, जो इस प्रकार है :-

"दीछित परसराम दादौ है विदित नाम,
जिन कीने जज्ञ जाकी जग में बड़ाई है ।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाकौं,
गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है ।
महा जानि मनि विद्यादान हू कौ चिंतामनि ,
हीरामनि दीछित तें पाई पंडिताई है ।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई हैं ।"

इस छंद से स्पष्ट होता है कि इनके दादा अर्थात् पितामह का नाम परशु-राम दीक्षित था तथा इनके पिता गंगाधर दीक्षित गंगा के किनारे अनूप बस्ती में रहते थे । अनूप का अर्थ गंगा के किनारे स्थित प्रसिद्ध नगर अनूप शहर भी

हो सकता है, जो उत्तर-प्रदेश के बुलंद शहर जिले में स्थित है। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता, पर जब तक कोई अन्य प्रमाण न मिले, तब तक उन्हें अनूप शहर का निवासी मानने में कोई हानि नहीं है। कुछ लेखक सेनापति को संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान भट्ट नागेश दीक्षित सिद्ध करते हैं। उनका भी यह कथन है कि भट्ट नागेश दीक्षित उसी समय के थे एवं वे भी गंगा के तट पर ही निवास करते थे। यह सत्य है कि सेनापति भी अपनी रचनाओं के आधार पर संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् सिद्ध होते हैं। परन्तु वे भट्ट नागेश दीक्षित ही है—ऐसा कहना कठिन है। क्योंकि नागेश भट्ट के पिता का नाम शिव भट्ट था, और वे शृंगवेरपुर के महाराज रामदत्त के आश्रय में रहते थे। वे काशी में ही अधिकतर रहे। वे प्रसिद्ध वैयाकरण महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की टीका की। नागेश भट्ट के गुरु हरि दीक्षित थे। परन्तु नागेश भट्ट की किसी हिन्दी रचना का पता नही चलता, न नागेश भट्ट के सेनापति उपनाम के ही सम्बन्ध में कोई सूचना प्राप्त होती। परन्तु दोनों में कुछ साम्य ऐसा है—जो इस अनुमान को पुष्ट करता है कि दोनों एक हो सकते हैं। सेनापति के पिता गंगाधर शिव का ही दूसरा नाम हो सकता है और शिव भट्ट नागेश जी के पिता थे। इसी प्रकार सेनापति के गुरु हीरामन दीक्षित थे, जब कि नागेश भट्ट के गुरु हरि दीक्षित थे। हरि और हीरा मे ध्वन्यात्मक साम्य ही है। इसके अतिरिक्त सेनापति की प्रसिद्धि सीतापति के प्रसाद से हुई। नागेश जी भी महाराज राम के आश्रित थे, तथा दोनों ही गंगा के किनारे रहने वाले थे। अनुमान के लिए थोड़ा आधार यद्यपि इन बातों से मिल जाता है, परन्तु निश्चित रूप से प्रमाण के साथ यह कहना कठिन है कि नागेश भट्ट और सेनापति एक हो है।

सेनापति के सम्बन्ध में और कोई सूचना नहीं प्राप्त होती। अभी तक उनकी एक ही कृति प्राप्त हुई है, जिसका नाम है, '**कवित्त रत्नाकर**'। कुछ इतिहासकारों ने इनकी दूसरी कृति 'काव्य-कल्पद्रुम' भी मानी है, पर वह उपलब्ध नही है। और कुछ लोग '**काव्य-कल्पद्रुम**' **और** '**कवित्त-रत्नाकर**' को एक ही ग्रंथ मानते है। कवित्त-रत्नाकर में पाँच तरंगें और तीन सौ चौरानबे छंद हैं। इसके अन्तर्गत सेनापति ने श्लेप अलंकार, शृंगार, षट्ऋतु, रामायण और रामरसायन का वर्णन किया है। इनकी प्रथम तीन तरंगों से स्पष्ट हो जाता है

कि इनका प्रणयन रीति-परम्परा का ध्यान रखकर किया गया है । इनके छंदों की मूलचेतना रीति-कालीन है । इसीलिए इन्हें रीति-बद्ध कवि मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती ।

सेनापति का प्रिय अलंकार श्लेष है । इसीलिए इन्होंने पूरी-की-पूरी तरंग इसी श्लेष अलंकार का चमत्कार दिखाने के लिए रची है । इनके ये श्लेष बड़े रोचक एवं काव्य-चमत्कार से पूर्ण है । श्लेष-योजना में सेनापति की समता करने वाला केशव को छोड़कर अन्य कोई कवि नहीं । सभंग पद-श्लेष और अभंग पद-श्लेष दोनों का चमत्कार इसमें मिलता है । श्लेष के आधार पर इन्होंने अनेक रोचक साम्य स्थापित किये है । इन्होंने राम-कथा को गंगाधर के समान, गंगा में मज्जन-अंजन के समान तथा बचन ईश्व के समान सिद्ध किया है । इन्होंने एक श्लेष में सीतापति को साहु के समान प्रकट किया है । छंद इस प्रकार है :

"जाके रोजना में में सेस सहस बदन पढ़े,
पावत न पार जउ सागर सुमति को ।
कोई महाजन ताकी सरि को न पूजे,
नभ जल थल व्यापि रहे अद्‌भुत गति को ।
एल-एक पुर पीछे अगनित कोठा तहाँ,
पहुँचत आप सँग साथी न सुरति को ।
बानियै बर वानी जाकी हुण्डी न फिरति,
सोई नाहु सियरानी जू को साहु सेनापति को ।"

इसी प्रकार अन्य अनेक चमत्कारी छद इसमें है । कवित्त रत्नाकर के दूसरी तरंग में शृंगार वर्णन है, जिसके भीतर नख-शिख सौन्दर्य, उद्दीपन भाव, वयः संधि आदि का मनोहर चित्रण हुआ है । शृंगार के कहीं-कहीं बड़े सुन्दर चित्र इसमें हैं । पर मूल प्रयत्न शब्द-चमत्कार-प्रदर्शन का है, भाव और गुण का विश्लेषण उतना नही है । इस बात को स्पष्ट करने वाला निम्नलिखित छंद दृष्टव्य है :

"नूपूर को झनकाइ मेदनी धरति पाइ,
ठाढ़ी आइ आंगन भई ही साँझी बार सी ।
करता अनूप कीन्ही रानी मैं न भूप किसी,
राजे रासि रूप की विलास-को अधार सी ।

सेनापति जाके हग दूत ह्वै मिलत दौरि,
कहत अधीनता को होत है सिपारसी ।
गेह को सिंगार सी सुरत सुख सार सी,
सो प्यारी मानो आरसी चुभी है चित आरसी ।"

सेनापति की अप्रतिम सफलता उनके उत्कृष्ट ऋतु-वर्णन में है जिसमें यद्यपि शब्द और अर्थ का चमत्कार भरा पड़ा है, परन्तु वर्णित ऋतु का सहज और यथार्थ स्वरूप उनके छदों में बड़ा खरा उतरता है । प्रत्येक ऋतु में उठने वाले लोक-मानस के सहज भाव भी ऋतु-वर्णन के छंदों में तरंगित हो उठते है । इनके ऋतु-वर्णन के छद ही सर्वाधिक प्रसिद्ध है । यद्यपि सभी ऋतुओं का सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है, पर ग्रीष्म और वर्षा का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली है । केवल एक छंद ही इसके लिए पर्याप्त होगा–

"दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखौ,
आई रितु पाउस, न पाई प्रेम पतियाँ ।
धीर जलधर की, सुनत धुनि धर की, है,
दर की सुहागिल की छोह भरी छतियाँ ।
आई सुधि बर की, हिये में आनि खरकी तू,
मेरी प्रान प्यारी यह पीतम की बतियाँ
बीती औधि आवन की, लाल मन भावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ ।।"

इससे स्पष्ट है कि इनके ऋतु-वर्णन बड़े मार्मिक है । चौथी और पाँचवी तरंगों में राम का चरित्र और राम भक्ति-भावना का सक्षिप्त सुन्दर वर्णन है । इन तरंगों मे शृंगार, वीर, शान्त और भक्ति-भाव प्रधान है । पाचवी तरग में भी आलंकारिक चमत्कार भरा पड़ा है । जिसमें यमक, श्लेप, अनुप्रास, चित्र, प्रश्नोत्तर आदि के चमत्कार की विशेपता है ।

सेनापति की कविता में उनकी प्रतिभा फूटी पड़ती है । निश्चित एवं सुनियोजित लय में संतुलित गति से चलती हुई उनके छंदों की पंक्तियाँ नर्तकी के पद-संचार का सौन्दर्य बिखेरती हैं । उनके वर्णो और शब्दों का ध्वनि-सौन्दर्य नृत्य के मनोहर लालित्य से युक्त है । इससे स्पष्ट होता है कि शब्दों और भापा पर उनका असाधारण अधिकार है । शब्द-चमत्कार के साथ-साथ उनकी कविता में उक्तिवैचित्र्य उनके छंदों को स्मरणीय बनाता है जो उनकी प्रतिभा और

कविवर मतिराम

मिश्रबंधुओं के द्वारा हिन्दी कविता के नवरत्नों मे परिगणित मतिराम अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न एव उत्कृष्ट व्रजभाषा-कवि हैं। मतिराम के जीवनवृत्त एवं उनके ग्रन्थों और कवित्व की सूचना प्रायः हिन्दी साहित्य के समस्त इतिहास-ग्रंथों में मिलेगी परन्तु मतिराम सम्बन्धी उल्लेख भिखारीदास कृत 'काव्य-निर्णय', गोकुल कृत 'दिग्विजयभूषण' जैसे काव्य-ग्रथो मे भी मिलते है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो – शिवसिह सेंगर, गार्सा द तासी, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास आदि ने जो सूचना उनके जीवन-वृत्त और रचनाओं के सम्बन्ध मे दी है, वह परम्परा-प्रसिद्ध एव ग्रथो के उल्लेखों के आधार पर है। जिस ग्रथ में लगभग समस्त सामग्री का उपयोग पहले-पहल भली रीति से किया गया, वह है कृष्णविहारी मिश्र कृत "मतिराम ग्रंथावली"। सबसे पहले विस्तृत जीवन चरित देने वाला ग्रथ "हिन्दी नवरत्न" है जिसका मुख्य आधार "शिवसिह सरोज" है। परन्तु अब मतिराम की जीवनी एवं साहित्य को लेकर दो शोध-प्रबन्ध भी लिखे जा चुके है—एक महेन्द्रकुमार का "मतिराम—कवि और आचार्य" है और दूसरा त्रिभुवन सिह का "महाकवि मतिराम"। इन दोनो ग्रथो में लगभग समग्र उपलब्ध सामग्री का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु, अनेक प्रमाण होते हुए भी इन दोनो ही विद्वानो ने मतिराम के नाम पर मिलने वाले समस्त ग्रथो के रचयिता एक ही और प्रसिद्ध कवि मतिराम को माना है।

मेरा विचार इस सम्बन्ध मे मतिराम नाम के दो कवियो को स्वीकार करने के पक्ष मे है। इन ग्रथों अर्थात् फूलमजरी, रसराज, ललितललाम, सतसई, अलंकार पचाशिका, छन्दसार (पिंगल) संग्रह या वृत्तकौमुदी, साहित्यसार और लक्षणशृगार—के रचयिता दो मतिराम थे, इस बात की पुष्टि मे निम्नलिखित प्रमाण दिए जा सकते है—

(१) मतिराम का जन्म-समय १६०३ ई० (स० १६६०) के लगभग आताहै और 'कौमुदी' की रचना उन्होने १७०१ ई० (स० १७५८) में की और कुछ लोगो का विचार है कि 'साहित्यसार' आदि की रचना और भी बाद मे हुई। एक ही व्यक्ति के सभी ग्रंथ मानने पर 'वृत्तकौमुदी' की रचना ९८ वर्ष

की आयु में और अन्य ग्रंथों की रचना उसके भी बाद ठहरती है । इस अव
में मतिराम का श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा स्वरूप साहि बुन्देला के आ
में जाना और 'छन्दसागर-संग्रह' या 'वृत्त- कौमुदी' की रचना करना अ
संगत नही जान पड़ता ।

(२) दोनों मति- रामों के वंश परिचय भिन्न-भिन्न है और दोनों
सम्बन्ध भिन्न गोत्रों के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है ।[1]

(३) दोनों मतिरामों के समयों में ही थोड़ी भिन्नता नही, वरन् दं
का कार्यक्षेत्र भी भिन्न रहा है । मतिराम का आगरा, बूंदी आदि था त
दूसरे मतिराम का पहाड़ी क्षेत्र, कुमायूँ, गढ़वाल आदि था । (४) दोनों
भाषा-शैली मे भी भिन्नता परिलक्षित होती है । जहाँ 'रसराज' और 'ल
ललाम' के रचयिता मतिराम की भाषा समर्थ, विदग्ध, अलंकार एवं भ
व्यंजना की अद्भुत क्षमता-सम्पन्न, ऐतिहासिक संदर्भ-संयुक्त तथा छन्द प्रव
पूर्ण, सुन्दर, मोहक गतिवाले है, वहाँ वृत्तकौमुदीकार की भाषा सामान्य,
शिथिल तथा शैली अभिधात्मक है ।

(५) 'रसराज' के प्रणेता मतिराम ने न कही किसी ग्रंथ मे अपना परि
दिया है और न रचना-काल ही, क्योकि वे स्वयं ही अति प्रसिद्ध कवि थे
उनके ग्रंथ भी अति विख्यात थे । किसी भी दरबार में मतिराम जैसे कवि
जाना उसकी परम शोभा ही थी । अतः उन्हें अपने परिचय की आवश्य
नही पड़ी । परन्तु वृत्तकौमुदीकार की शैली ऐसी है जिसमे रचनाकाल
दिया हुआ है । अतः दोनों व्यक्तियों की भिन्न पद्धतियाँ है ।

(६) यदि 'अलकारपंचाशिका' और 'वृत्तकौमुदी' या 'छन्दसार संग्रह'
बाद मे प्रसिद्ध मतिराम द्वारा अधिक परिपक्वावस्था मे लिखे गए होते, तं
निश्चय ही वैचारिक और भाषा सम्बन्धी अधिक प्रौढ़ता का द्योतन कर
यह हो सकता है कि उनमें कवित्व की मात्रा कम हो जाती, पर उनमें अ
संदर्भ-गर्भता होनी चाहिए थी । परन्तु, ऐसा नही है । उपर्युक्त कारणं
दोनों मतिराम भिन्न-भिन्न है, यह मानना उचित है । ऊपर लिखे हुए प्र

---

१. देखिए वृत्तकौमुदीकार मतिराम का परिचय तथा रसचन्द्रिक
बिहारीलाल का परिचय—(महाकवि मतिराम—डॉ० त्रिभुवनां
पृ० १०६ व ११४)

चार ग्रंथों के प्रणेता, प्रसिद्ध कवि मतिराम है और दूसरे चार ग्रंथो के रचयिता दूसरे मतिराम हैं ।

प्रथम प्रसिद्ध मतिराम उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में स्थित टिकमापुर (त्रिविक्रमपुर) के निवासी और प्रसिद्ध आचार्य और कवि चिन्तामणि त्रिपाठी और भूषण के भाई थे । इसका उल्लेख 'वेशभास्कर' एव 'तजकिरये सर्व आजाद हिन्द' में हुआ है । भूषण ने प्रसिद्ध ग्रथ 'शिवराज भूषण' में अपना परिचय इस प्रकार दिया है---

'द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतन सुत धीर ।
बसत त्रिविक्रम पर सदा, तरनि तनूजा तीर ।।२६।।

इससे स्पष्ट होता है कि भूषण रत्नाकर के पुत्र और कश्यपगोत्रीय कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण थे । इस बात की पुष्टि, मतिराम के प्रपौत्र तथा चरखारी नरेश महाराज विक्रमादित्य के राजकवि बिहारीलाल कृत 'विक्रम सतसई' की टीका "रसचंद्रिका" के अन्तर्गत होती है । इसमे अपना परिचय देते हुए बिहारीलाल ने लिखा है—

बसत त्रिविक्रम पुरनगर, कालिन्दी के तीर ।
विरच्यो भूप हमीर जबु, मध्यदेश को हीर ।।१।।
भूषन चिन्तामनि तहाँ, कविभूषन मतिराम ।
नृप हमीर सनमान ते, कीन्हें निज-निज धाम ।।२।।
हैं पन्ती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल ।
जगन्नाथ नाती विदित, सीतल सुत सुभचाल ।।३।।
कस्यप वँस कनौजिया, विदित त्रिपाठी गोत्र ।
कविराजन के वृन्द में, कोविद सुमति उदोत ।।४।।

इससे स्पष्ट होता है कि भूषण और बिहारीलाल एक ही गोत्र के थे और निश्चय रूप से मतिराम और भूषण का सम्बन्ध भाई-भाई का था । नाती और पंती शब्दों से कुछ लोग दौहित्र (पुत्रीपुत्र) और प्रदौहित्र का अर्थ लगाने के पक्ष मे है । और इस प्रकार वे मतिराम को वत्सगोत्री परम्परा में डालकर उपर्युक्त वर्णन मतिराम की पुत्री के वश की परम्परा में रखना चाहते है, पर वह तर्क-संगत नही । पहली बात तो यह है कि वे कश्यप गोत्र षट्कुलों में से हैं और षट्कुलों में परस्पर विवाह की ही प्रथा प्रचलित रही है । वत्सगोत्रीय

सम्बन्ध उनसे नहीं होते रहे। दूसरी बात यह है कि यदि ऐसा कुछ होता, तो चिन्तामणि या भूषण से बिहारीलाल का अधिक सीधा सम्बन्ध होता, क्योंकि यदि मतिराम वत्सगोत्री होते और बिहारीलाल के परनाना होते, तो या तो बिहारीलाल अपने परबाबा (प्रपितामह) का नाम देते और यदि वे भूषण या चिन्तामणि ही होते, तो अपने को इनका प्रपौत्र कहने में भी गर्व का अनुभव करते। परन्तु, ऐसा उन्होंने नही किया। उन्होंने पिता से पहले अपने बाबा (पितामह) के रूप में जगन्नाथ का और परबाबा (प्रपितामह) के रूप में ही मतिराम का स्मरण किया है। अतः पंती और नाती शब्द, प्रपौत्र और पौत्र के लिए ही आए है। ये शब्द उस क्षेत्र में इन अर्थो में प्रचलित है। (लेखक का जन्मस्थान टिकमापुर से दस-बारह मील दूर ही है और उसने स्वयं वहाँ जाकर भी इसकी पुष्टि की है। अब भी वहाँ 'कविन के घर' के रूप में घरों के खंड-हर विद्यमान हैं)। अतः मतिराम और भूषण दोनों ही कश्यपवंशीय त्रिपाठी तथा परम्परा-प्रसिद्ध के अनुसार सहोदर भाई थे। वत्सगोत्रीय वनपुर निवासी मतिराम दूसरे थे।

इसके अतिरिक्त "ललितललाम" ग्रंथ में कविवर मतिराम ने जो लक्षण दिए है, लगभग वही लक्षण भूषण ने अपने ग्रंथ शिवराज भूषण में भी स्वीकार किए है। 'ललितललाम' पहले बना है, अतः निस्संकोच लक्षणों को ले लेने के कारण भी दोनों ही का सगे भाई होना प्रमाणित हो जाता है, जिसमें मतिराम बड़े और भूषण छोटे थे, यह भी स्पष्ट होता है। किंवदन्ती मे भी भूषण का अपनी बड़ी भौजाई के ताना मारने पर घर से निकल जाने की ख्याति है। हो सकता है कि वे भौजाई मतिराम की स्त्री ही हों। इनके पति राजदरबारों में प्रसिद्धि और सम्पत्ति प्राप्त कर चुके थे। अतः चिन्तामणि, मतिराम और भूषण ये सगे भाई थे और इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था।

मतिराम ने किसी भी ग्रंथ में अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनके जन्म-समय के सम्बन्ध में भी कुछ कहना कठिन है। 'फूलमंजरी' के आधार पर इनका जन्म-समय कृष्णबिहारी मिश्र के अनुसार १६०२ ई० (सं० १६६० वि०) के लगभग आता है। "फूलमंजरी" इनकी सर्वप्रथम रचना है, जो जहाँगीर की आज्ञा से आगरे में लिखी गई। जहाँगीर अपने राज्यारोहण का १६वाँ जलूसी वर्ष आगरे में मना रहा था, उसी समय के आस-पास इसकी

रचना हो सकती है। वह समय १०३० हिजरी या सं० १६७८ वि० था। मतिराम की यह किशोरावस्था की रचना मानने से उनकी अवस्था उस समय १८ वर्ष की रही होगी। अतः मतिराम का जन्म १६०२ ई० (१६६० वि०) ठहरता है।

मतिराम का अधिकांश समय बूँदी दरबार में व्यतीत हुआ था और वहाँ के हाड़ा राजाओं की वीरता और चरित्र का वर्णन इन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ "ललितललाम" में किया है। जिन राजाओं का वर्णन उसमें आया है, वे राव सुरजन, रावराजा भोज, राव रतनसिंह, महाराज छत्रसाल और दीवान भावसिंह हैं। 'फूलमंजरी' इन्होंने जहाँगीर के लिए बनायी। सम्भव है, बूँदी दरबार से इनका सम्बन्ध उस समय भी रहा हो और बूँदी नरेश के साथ ही ये आगरे गए हों। 'ललितललाम" ग्रंथ दीवान भावसिंह के आश्रय में लिखा गया और इसके अनेक छन्द उनकी वीरता एवं दान की प्रशंसा में है। इसके अतिरिक्त 'मतिराम सतसई' किन्ही राजा भोगनाथ के लिए लिखी गई, जिनका ठीक इतिहास अभी ज्ञात नही है। ये भी राजस्थान या मध्यप्रदेश के कोई राजा या धनी-मानी किन्तु रसिक व्यक्ति ज्ञात होते है।

प्रसिद्ध मतिराम की केवल चार रचनाएँ ही प्रामाणिक मानी जानी चाहिए, जो रचनाक्रम के विचार से हैं—फूलमंजरी, रसराज, ललितलमाम और सतसई।

द्वितीय मतिराम का परिचय केवल 'वृत्तकौमुदी' के आधार पर ही प्राप्त होता है।

तिरपाठी बनपुर बसै, वत्सगोत्र सुठिगेह,
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह ।।
भूमिदेव बलभद्र हुआ, नितहि तनुज मुनि-गान।
मंडित पंडित मंडली, मंडन मही महान ।।
तिनके तनय उदार मति, विस्वनाथ हुआ नाम।
दुतिधर श्रुतिधर कौ अनुज, सकल गुननि कौ धाम।
तासु पुत्र मतिराम कवि, निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान को बरन्यो सुजस अपार ।।

—वृत्तकौमुदी

इस, 'वृत्तकौमुदी' का विवरण भगीरथप्रसाद दीक्षित ने अपने लेख तथा 'भूषण विमर्श' नामक ग्रंथ में दिया है। इसके अनुसार मतिराम के पिता का नाम विश्वनाथ था, पितामह का बलभद्र, प्रपितामह का गिरिधर। ये वत्सगोत्री त्रिपाठी थे और इनका निवासस्थान बनपुर था। ये प्रसिद्ध मतिराम से भिन्न थे, जिनका परिचय बिहारीलाल की 'रसचद्रिका' में और विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा ढूँढ़े गए मथुरा के चौबों के यहाँ प्राप्त वंशवृक्ष में मिलता है। इसके अनुसार मतिराम के पिता रतिनाथ और पुत्र जगन्नाथ, पौत्र शीतल तथा प्रपौत्र बिहारीलाल थे। अत. यह कल्पना भी सही नही उतरती कि मतिराम की पुत्री की वंशपरम्परा में बिहारीलाल थे और इस कारण गोत्र-भिन्नता है। इसलिए दोनों मतिराम भिन्न-भिन्न थे और 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता वत्सगोत्री द्वितीय मतिराम थे और वे 'रसराज' के रचयिता कश्यपगोत्री मतिराम से भिन्न व्यक्ति थे।

वत्सगोत्रीय, बनपुर निवासी मतिराम द्वितीय का परिचय और अधिक प्राप्त नही होता। यो टिकमापुर के निकट ही जिला फतेहपुर में बनपुरा नामक ग्राम है और हो सकता है कि यही मतिराम द्वितीय का स्थान बनपुर हो। इन मतिराम की लिखी हुई रचनाएँ हे अलंकार पचाशिका, साहित्यसार, लक्षण शृगार और छन्दसार संग्रह या वृत्तकौमुदी।

मतिराम रीतिकाल के सुकुमार कल्पना के कवि माने जाते है। यद्यपि इन्होंने काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार कई ग्रंथ लिखे, फिर भी इनकी अलंकृति बडी सहज और मार्मिक है। सौन्दर्य एव शृंगार भावना की इनकी अभिव्यक्तियाँ अनूठी है। इनकी भाषा सहज, मधुर एवं प्रांजल है। इन्हें जैसे छन्द-रचना की सिद्धि प्राप्त थी; क्योंकि इनकी शब्दावली आयास-रहित एवं मर्मस्पर्शी है। रीतिकाल में बिहारी सतसई के समान ही मतिराम के 'रसराज' ग्रंथ की धूम रही जिसमें इन्होंने शृंगार और नायिका भेद का सुन्दर निरूपण किया है। इनका 'ललितललाम' अलंकार-निरूपण का ग्रंथ है। इसके अन्तर्गत मतिराम की नव्य कल्पना एवं बिम्बसृष्टि की सतरंगी विशेषतायें प्रकट हुई है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण सहज प्रतिभा के धनी कविवर मतिराम रीतियुग के एक उत्कृष्ट कवि माने जाते है।

महाकवि भूषण

कहाकवि भूषण के जन्मकाल और नाम के सम्बन्ध में विवाद है, और कुछ लोग इनके आश्रयदाता के सम्बन्ध में भी शंका उठाते है कि ये महाराज शिवाजी के समकालीन न होकर उनके पौत्र साहू के समकालीन थे। परन्तु अनेक तथ्यों के आधार पर अब यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि भूषण महाराज शिवाजी के ही दरबार में थे और उन्ही के समकालीन भी थे। इनके बड़े भाई चिंतामणि छत्रसाल शिवाजी के पिता सदाजी भोंसले के आश्रय में रहे। यह भी निर्विवाद है कि चिंतामणि, भूषण और मतिराम तीनों ही भाई थे। उनके चौथे भाई का नाम भी नीलकंठ या जटाशंकर के रूप में कुछ विद्वान मानते है। भूषण कान्यकुब्ज वंशीय कश्यपगोत्रीय त्रिपाठी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर था और वे कानपुर के अंतर्गत यमुना के समीप टिकवांपुर (त्रिविक्रमपुर) के रहने वाले थे। आज भी इस गाँव में कवियों का घर के रूप में भूषण के परिवार का घर विद्यमान है। भूषण का जन्म १९९२ के आस-पास माना जाता है। ये प्रारम्भ में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त नही कर सके। परन्तु ऐसी किंवदंती है कि अपनी भावज के ताना देने पर इनके मन में इतना प्रभाव पडा कि ये विद्याध्ययन और काव्य-रचना के लिये घोर परिश्रम करने लगे और ये चित्रकूट अधिपति हृदयराम के पुत्र रुद्रराम सोलंकी के यहाँ लगभग ३० वर्ष की आयु मे गये और इनकी कविता पर प्रसन्न होकर उन्होने कवि भूषण की उपाधि दी। यह बात भूषण रचित 'शिवराज भूषण' के निम्नलिखित छंद से स्पष्ट होती है:—

कुल सुलंकि चित्रकूट पति साहस शील समुद्र,
कवि भूषण पदवी दई हृदय राम सुत रुद्र।'

इसके उपरांत ही भूषण का यश विस्तृत हुआ। कुछ लोगों का विचार है कि भूषण औरंगजेब के यहाँ भी गये थे। परन्तु इसका कोई प्रमाण नही है। सं० १७२४ में भूषण शिवाजी के यहाँ गये और उन्हे अपना छंद सुनाया। वह छंद शिवाजी की प्रशंसा में था। कहते हैं कि उस छंद पर महाराज शिवाजी इतना प्रसन्न हुए कि उसे १८ बार सुना और प्रसन्न होकर भूषण को १८ लाख मुद्रा, १८ हाथी और १८ ग्राम पुरस्कार में दिये और इन्हे अपना राजकवि भी बनाया। वही रहकर भूषण ने १७३० में अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ

'शिवराज भूषण' रचा । सं० १७३१ में ये शिवाजी के यहाँ से अपने घर आये और मार्ग में बुंदेलकेसरी महाराज छत्रसाल से भेंट की । महाराज छत्रसाल ने भी इनका बड़ा सम्मान किया । भूषण ने प्रसन्न होकर छत्रसाल के लिए 'छत्रसाल दशक' ग्रंथ की रचना की ।

कुछ समय के उपरांत भूषण फिर महाराज शिवाजी के यहाँ गये । और वहाँ रहकर समय-समय पर अनेक छंद बनाते रहे । उनके ये छंद 'शिवा बावनी' नाम से संग्रहीत हैं । भूषण के नाम पर कई अन्य ग्रंथ भी कहे जाते हैं, जैसे भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास आदि । परन्तु इन ग्रंथों में कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते, दूषण उल्लास नामक एक ग्रंथ इनके बड़े भाई चिंतामणि के नाम से उपलब्ध होता है, पर वह भी उनके कविकुल कल्पतरु का एक अध्याय है । इस प्रकार प्रामाणिक रूप से भूषण के ३ ग्रंथ ही माने जा सकते है—१ शिवराज भूषण, २ छत्रसाल दशक और ३ शिवाबावनी ।

कविवर भूषण दीर्घ जीवी थे और इनकी मृत्यु स० १७९७ मे १०२ वर्ष की भोगकर मानी जाती है । अतः शिवाजी के स्वर्गवासी होने पर इनका संपर्क महाराज छत्रसाल और छत्रपति साहू जी से रहा । साहू जी सं० १७६४ में दिल्ली से मुक्त हुए थे । उसी समय के आस-पास उन्होंने साहू जी और छत्रसाल दोनों की प्रशंसा करते हुए एक छद लिखा जो इस प्रकार है—

सजत अखण्ड तेज, छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद, दिग्गजन उर साल को ।
जाहि के प्रताप से मलिन आफताप होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहुख्याल को ।
साज सजि गज, तुरी, पैदर कतार दीन्हे,
'भूषन भनत ऐसो दीन–प्रतिपाल को ?
और राव–राजा एक मन में न लाऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ।।

(छत्रसाल दशक, ६८१०)

इस छंद के आधार पर पंडित भगीरथप्रसाद दीक्षित ने शिवाजी के समकालीन न मानकर साहू के समकालीन माना था, परन्तु वे दोनों के ही समकालीन थे । इन तीन महाराजाओं के अतिरिक्त भूषण का सम्बन्ध रीवांनरेश

अवधूतसिंह, कुमायूं नरेश ज्ञानचंद, गढ़वाल नरेश फतेसाह, जयपुर नरेश सवाई जयसिंह, बूँदी नरेश राव-राजा बुद्धसिंह, असोथर नरेश भगवंत राय रवीची आदि राजाओं से भी था । इस प्रकार काव्य-प्रतिभा के साथ विभिन्न राज्यों की यात्रा से देश का व्यापक अनुभव प्राप्त करने वाले कवि थे ।

इस व्यापक अनुभव और अपनी मनोभावना के कारण भूषण ने तत्कालीन भारतीय नरेशों के यहाँ जाकर उनकी परीक्षा के उपरांत शिवाजी को ही एक योग्य और उच्च नरेश के रूप में स्वीकार किया और उसी की प्रशंसा में उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का संयोजन किया । शिवाजी को लेकर लिखे गये इनके ग्रंथ कवि सुलभ अत्युक्तियो से युक्त होते हुए भी अनर्गल और झूठी प्रशंसा के रूप में नही है । उनके पीछे उदात्त चारित्रिक गुणों की भूमिका है और ऐसे ही व्यक्तियों को प्रशंसित और प्रभावित करने के लिए भूषण ने अपनी काव्य की सृष्टि की । शिवाजी और छत्रसाल सम्बन्धी छदों से जहाँ एक ओर इन राजाओं के उच्च चरित्र का संकेत मिलता है, वही उनसे सम्बन्धित छंदों में अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते है और इतिहास-कारों ने उनका विश्लेषण करके यह निश्चित किया है कि भूषण द्वारा वर्णित तथ्य ऐतिहासिक है, काल्पनिक नही ।

भूषण उच्च प्रतिभा के कवि थे और उनकी यह प्रतिभा सहज रूप में उनके शब्द चयन और सटीक, उच्च और कभी-कभी विराट कल्पना मे प्रकट होती है । कल्पना-प्रसूत उनकी विम्ब-सृष्टि एक अद्‌भुत नव्यता रखती है एव उसके द्वारा वस्तु, परिस्थिति, घटना और चरित्र का बड़ा सही उद्‌घाटन हो जाता है । एक ओर जहां शब्दो मे निहित भाव को झकृत, प्रेरित और उत्तेजित करने की शक्ति है, वही दूसरी ओर भावानुभूति से भर देते है । इसीलिए भूषण का काव्य उनकी सहजा प्रतिभा का साक्षात् प्रमाण है । इस बात को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित छद दिये जा रहे है—

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा-सिवा जी गाजी,
तुग्ग बाचे डग्गपर रुंड-मुंड फरके ।
'भूषन' भनत बाजे जीति के नागारे भारे,
सारे करनाटी-भूप सिंहल को सरके ।

मारे सुनि सुभट पनारे-वारे उदभट,
तारे लागे फिरन सितारे-गढ़धर के ।
बीजापुर बारन के, गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ।।

+ + +

रैया-राय चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
'भूषन' भनत समसेरैं जोम जमकैं ।
भादों की घटा-सी उठी गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं फेरैं दामिनी-सी दमकैं ।
खान उमरावन के, आन राज-रावन के,
सुनि-सुनि उर लागैं धन की-सी धमकैं ।
बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
नांघती पगारन नगारन की धमकैं ।।

+ + +

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूत सिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन डाटियतु है;
प्रलै के-से धराधर धमकैं नगारा, धूरि,
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है ।
भूषन' भनत भुवगोल को कहर तहाँ,
हहरात तगा जिमि गज काटियतु है ।
काँच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ की पीठि पै पिठी से बाँटियतु है ।।

उक्त छंदो से स्पष्ट है कि भूषण की मूल प्रवृत्ति वीर रस की थी । वीर रस से सम्बन्धित विभिन्न भावो और सन्दर्भो का प्रस्फुरण भूषण की कविता मे सहज रूप से देखा जा सकता है । भूषण की रचनाओं में वीर रस के अतिरिक्त रौद्र, भयानक, बीभत्स रसों का भी चित्रण हुआ है, पर वे वीर रस के सहकारी रूप में ही । हास्य, शांत और शृंगार के भी कुछ उदाहरण उनकी रचनाओं में मिल जाते है । इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि भूषण रस-सिद्ध कवि थे ।

अनेक स्थलों पर भूषण का वस्तु-वर्णन और दृश्य-चित्रण भी बड़ा रोचक

है । इससे यह स्पष्ट होता है कि भूषण मूलतः प्रबंध कवि थे और यदि उन्होंने कोई प्रबंध रचना की होती तो उसमें ये अत्यन्त सफल हुए होते । परन्तु समय की प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने वैसा नही किया । इनके 'शिवराज भूषण' में प्रायः सभी अलंकारों का बडा सुन्दर स्वरूप स्पष्ट हुआ है, जो इनकी कविता के कलापक्ष को उद्घाटित करता है । कुछ अलकारों में इनकी विलक्षण सूझ और मौलिकता प्रकट होती है ।

भूषण के प्रसंग में एक और प्रश्न उठता है, वह यह कि क्या इन्हें राष्ट्रीय कवि कहा जा सकता है ? और इनकी रचनाओ मे औरगजेब तथा म्लेच्छों के प्रति अनेक तीव्र कटूक्तियों को देखकर इनको जातीय भावना का कवि कहते है । विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भूषण का विरोध मुसलमानों मे नही, वरन् अत्याचारी औरंगजेब से और औरंगजेब के कुकृत्यों और कट्टरतापूर्ण कार्यो को लक्ष्य करके ही भूषण ने तीव्र प्रहार किए है । यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि इन्होंने औरगजेब के पूर्वज बाबर और अकबर की प्रशंसा की है । इससे प्रकट होता है कि भूषण का विरोध मुसलमानो से न होकर अत्याचारी औरंगजेब से ही था । उसी को लक्ष्य करके उन्होंने पीड़ित और अत्याचार की शिकार हिन्दू जाति के पक्ष का समर्थन किया है । भूषण के युग की वह स्थिति हमारे युग की अंग्रेजो के विरोधी उस स्थिति से भिन्न नही है, जब भारत मे स्वतत्रता-सग्राम चल रहा था । ऐसी दशा मे यदि आधुनिक युग की अंग्रेज-विरोधी भावना को राष्ट्रीय कहा जा सकता है तो उस समय भूषण द्वारा व्यंजित भावनाएँ भी राष्ट्रीय है ।

भूषण की भाषा मिश्रित भाषा है । उसमें सस्कृत, ब्रज, खडी बोली, अरबी, फारसी अनेक प्रचलित भाषाओ का मेल है । और इन विभिन्न भाषाओं के शब्दों को भूषण ने आवश्यकतानुसार तोड़ा-मरोड़ा भी है जिससे कि अपने छद को वह गति और लय प्रदान कर सके जो उन्हे वांछनीय है । अपने इस कार्य में भूषण सफल है । इनकी शैली ओजपूर्ण है और इन्होंने सवैया, घनाक्षरी, दोहा, छप्पय, गीतिका, हरिगीतिका, लीलावती और अमृत ध्वनि छंदों का बड़ी सफलता से प्रयोग किया है । भूषण की कविता से उनका ओजस्वी व्यक्तित्व स्पष्ट होता है और यह बात भी स्पष्ट होती है कि भूषण का कृतित्व उनकी सारी प्रतिभा के विस्तार को समेट नही पाया ।

देवदत्त (देवकवि)

हिन्दी के ब्रजभाषा काव्य के अन्तर्गत देव महाकवि के रूप मे प्रतिष्ठित है। यद्यपि ये कवि प्रतिभा में बिहारी, भूषण, मतिराम आदि से कम नहीं वरन् कुछ बढ़कर ही सिद्ध होते है, फिर भी इनका किसी एक विशिष्ट राजदरबार से सम्बन्ध न होने के कारण इनकी वैसी ख्याति और प्रसिद्धि नहीं हुई। देव को अत्यधिक प्रसिद्ध करने वाले लेखकों में मिश्रबन्धु है जिनके विचार से देव का स्थान हिन्दी साहित्य में तुलसी के बाद आता है। देव और बिहारी में कौन अधिक श्रेष्ठ है इसको लेकर एक विवाद भी चला था और जिसके अनुसार 'देव और बिहारी' की रचना पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र ने और 'बिहारी और देव' की रचना लाला भगवानदीन ने की थी। इन दोनों में देव और बिहारी की काव्य-प्रतिभा को स्पष्ट करने का प्रयत्न है।

'देव' नाम के हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत छः-सात कवि मिलते है परन्तु प्रसिद्ध कवि देव को छोड़कर अन्य देव नामधारी कवियों की कोई विशेष ख्याति नही हुई। 'देव' कवि का जन्म सं० १७३० में हुआ था। ये देव सरिया कान्यकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। 'देव' का निवास स्थान इटावा था। "भावविलास" की एक प्रति के निम्नलिखित उल्लेख से यही स्पष्ट भी होता है—

"देवसरिया कवि देव के नगर इटावो बास।"

और 'भाव विलास' की ही साक्षी पर इनके जन्म संवत् की भी पुष्टि होती है जिसकी रचना इन्होने सं० १७४६ में की थी। वह दोहा इस प्रकार है—

"सुभ सत्रह सौ छियालिस चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता भाव विलास सहर्ष॥"

'देव' ने कई आश्रयदाताओं के यहाँ रहकर अपनी रचनाएँ की। इनकी रचना अष्टमास औरंगजेब के पुत्र आजमशाह के संकेत पर हुई थी और उसने इन्हें पुरस्कृत भी किया था। संभवतः भाव-विलास भी आजमशाह के आश्रय में लिखी गई हो। 'देव' के दूसरे आश्रयदाता दादरी पति राजा सीताराम के भतीजे भवानीदत्त वैश्य थे। ये चरखी दादरी खोड़ी के रहनेवाले थे इनके

लिए इन्होंने "भवानी विलास" नामक ग्रन्थ लिखा । 'देव' के तीसरे आश्रय-दाता कुशल सिंह थे । ये फफूँद के रहनेवाले थे और 'देव' ने इनके लिये "कुशल विलास" नामक ग्रन्थ की रचना की । 'देव' के वास्तविक गुण-ग्राहक और आश्रयदाता राजा भोगीलाल हुए जिनके लिए इन्होंने "रस विलास" नामक ग्रन्थ की रचना की । इनके सम्बन्ध में 'देव' ने अपने "रस विलास" में लिखा है—

"भोगीलाल भूप लख पासन लिवैया जिन
लाखन खरचि रुचि आषर खरीदे हैं ।"

देव की कृति "प्रेम चन्द्रिका" इयोंड़िया खेड़े के राव मर्दनसिंह के पुत्र उद्योगसिंह को समर्पित है । "सुजान विनोद" की रचना दिल्ली के रईस पातीराम के पुत्र सुजान मणि के लिए हुई । इनकी अन्तिम रचना "सुखसागर तरंग" पिसनी के राजा अली अकबर खाँ के आश्रय में लिखी गई ।

'देव' की बहुसंख्यक रचनाओं का उल्लेख किया जाता है । कुछ लोग इनके ग्रन्थों की संख्या ७२ और कुछ लोग ५२ कहते है । परन्तु इनके प्रामाणिक ग्रन्थ जो प्राप्त होते है वे अठारह है । अन्य नौ ग्रन्थ भी इनके नाम से उल्लिखित है और इस प्रकार कुल २७ ग्रन्थ इनके नाम से मिलते है । परन्तु निर्विवाद रूप से जिन अठारह ग्रन्थो को देवकृत स्वीकार किया जा सकता है वे इस प्रकार है —

(१) भाव विलास (२) अष्टयाम (३) भवानी विलास (४) रसविलास (५) प्रेमचन्द्रिका (६) राग रत्नाकर (७) सुजान विनोद (८) जगत दर्शन पचीसी (९) आत्मदर्शन पचीसी (१०) तत्व दर्शन पचीसी (११) प्रेम पचीसी (इन चारो पचीसियों का नाम देवशतक भी है ।) (१२) शब्द रसायन (१३) सुख सागर तरंग (इतने ग्रन्थ प्रकाशित है)। हस्तलिखित ग्रन्थ है—(१४) प्रेम तरंग (१५) कुसल विलास (१६) जाति विलास (३७) देव चरित (१८) देवमाया प्रपंच ।

देवकृत एक संस्कृत ग्रन्थ भी 'शृंगार विलासिनी' नाम से भरतपुर मे प्रकाशित हुआ था । इसका विषय भी शृंगार और नायिकाभेद है और हिन्दी छन्दों की रचना इस ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे की गई है । यद्यपि इसकी रचना शुद्ध संस्कृत में है फिर भी देव की वास्तविक प्रतिभा के दर्शन इसमें नहीं होते

हैं अतएव इस ग्रन्थ को प्रसिद्ध देवकृत मानना संदिग्ध ही कहा जायगा ।

'देव' के इन बहुसंख्यक ग्रन्थो से यह निष्कर्ष निकालना कि सभी ग्रन्थ एक दूसरे से भिन्न है, भ्रमात्मक है । इनके एक ग्रन्थ के अनेक छन्द दूसरे ग्रन्थों में मिलते है और प्रायः इन्होने अपने किसी पूर्ववर्ती ग्रन्थ को आश्रयदाता का नाम बदल कर दूसरा नाम दे दिया है । देव का अधिकांश वर्ण्य विषय प्रेम और शृंगार है परन्तु प्रेम और शृगार के सम्बन्ध में उनकी धारणा अत्यंत उच्च है और उनकी भावना उदात्त और उज्ज्वल रूप मे प्रकट हुई है । 'देव' का काव्य-शास्त्रीय विवेचन भी जो इनके ग्रन्थो में लक्षण अंश में प्राप्त होता है अपनी मौलिक विशेषता रखता है । परन्तु 'देव' की अधिक प्रसिद्धि उनके लक्षणों में न होकर उदाहरणो में समाहित है । देव के सवैया और घनाक्षरी दोनों ही अपनी छाप रखते है और देव की सुन्दर रचनाओं को किसी दूसरे कवि की रचनाओं में मिलाकर छिपा रखना संभव न होगा । देव की रचना में जितना व्यापक अनुभव मिलता है उतनी ही गहरी भावुकता भी प्राप्त होती है । किसी भी भाव का 'देव'—जैसा सजीव और मर्मस्पर्शी वर्णन असाधारण वस्तु है । 'देव' की कल्पना केवल ऊहात्मक विशेषता ही नही रखती वरन वह अनुभूति के रस मे सिचित होकर सरसता सम्पन्न होती है । इसी प्रकार देव की शब्दावली भी अपनी है । भाषा पर इनका अद्भुत अधिकार है । देव की शब्दावली में संगीतमय प्रवाहयुक्त शब्द चयन, छन्द को सहज स्मरणीय बना देता है और रूप, सौन्दर्य, वस्तु, चरित्र के चित्रण में तो देव को अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई । देव अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण हिन्दी-साहित्य में अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान के अधिकारी हुए है यद्यपि समसामयिक राज सम्मान वैसा प्राप्त नही हुआ था । 'देव' हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में परिगणित हैं । काव्य-प्रतिभा के साथ-साथ इनकी रचना मे वैचारिक मौलिकता एवं अनुभव की सम्पन्नता भी मिलती है । दृश्यों और भावो का विशद मनोरम चित्रण देव की विशेषता है । अनेक छन्दो मे देव ने मनोभावों और मनःस्थितियों का बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया है । एक उदाहरण दृष्टव्य है—

मूरति वा मनमोहन की मनमोहिनी के हिय में हिरकी-सी ।
'देव' गोपाल को नाम सुने छतिया सियराति सुधा-सिरकी-सी ।

नीके झरोखनि झाँकि सकै नहिं नैननि लाज घटा घिरकी-सी ।
पूरन प्रीति हिये हिरकी खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी-सी ।

देव के अधिकांश छन्द अनुभूति मे मराबोर हैं । बिहारी के समान वे तटस्थ दृष्टि वाले व्यक्ति न होकर, प्रखर वैयक्तिक सवेदना के जीव थे । उनके अनेक छन्दो में प्रेम की तीव्रता भी प्रकट होती है । बिहारी की रचना मे उनकी रसिकता प्रकट होती है, पर देव की रचना से उनका प्रेमी व्यक्तित्व भी स्पष्ट होता है । देव के अन्तर्गत प्रबध और गीति दोनो प्रकार के काव्यों की प्रतिभा थी; पर युग के प्रवाह के कारण उसका समुचित प्रस्फुटन नही हो पाया । फिर भी जो रचना उन्होने की वह उनको सर्वोच्चकोटि के कवियो मे प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है ।

पद्माकर

रीतियुग के अतिम महत्वपूर्ण कवि पद्माकर थे । ये तैलग ब्राह्मण थे । इनके पूर्वज गोदावरी के निकट रहा करते थे । वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होकर वे बाद मे मथुरा शाखा के वैष्णव हुए । इनके पिता मोहनलाल भट्ट अच्छे विद्वान और कवि थे । वे सागर मे रहते थे और बाद मे बाँदा मे आकर बस गये । पद्माकर का जन्म स० १८१० वि० मे सागर में हुआ, क्योकि इनके पिता और परिवार के लोग कविता करते थे, इसलिए इनके वश का नाम ही कवीश्वर वंश पड़ गया था । पद्माकर के पिता को सागर, नागपुर, पन्ना, जयपुर, आदि राज्यो मे सम्मान और वृत्ति प्राप्त हुई थी । उसी परम्परा मे पद्माकर का भी सम्पर्क अनेक दरबारो से हुआ और इनकी काव्य-शक्ति पर मुग्ध होकर अनेक राजाओ ने इन्हे आश्रय दिया । सुगरा निवासी नोने अर्जुन सिह ने अपना इन्हे काव्य-गुरु बनाया था । ये दतिया के महाराज परीक्षित के यहाँ भी रहे । जयपुर के महाराज सवाई प्रतापसिह तथा महाराज जगत सिह के यहाँ इन्हे आश्रय और प्रतिष्ठा मिली । जगत सिह के नाम पर ही इन्होने 'जगत-विनोद' नामक रस-ग्रथ की रचना की । उदयपुर के राणा भीमसिह ने भी इनका सम्मान किया था । बूदी के महाराज भी पद्माकर को बहुत मानते थे और उन्ही के कहने से इन्होने राम-रसायन की रचना की थी जिसे कुछ लोग इनके दासी पुत्र की रचना मानते है । जयपुर निवास के समय पद्माकर को

कुष्ट रोग हो गया था । उसके निवारण के लिए इन्होंने 'प्रबोध-पचासा' की रचना की । ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया के यहाँ भी इन्हे आश्रय मिला तथा नरखारी नरेश के यहाँ भी ये गए थे । इनका अन्तिम समय कानपुर मे गंगा तट पर बीता, उस समय वे रुग्ण, निराश और खिन्न हो गये थे । वही रहकर इन्होंने 'गगालहरी' नामक ग्रन्थ की रचना की । पद्माकर का पद्माभरण नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है । यह चन्द्रालोक के आधार पर लिखा अलकार ग्रन्थ है । जब कि 'जगत विनोद' रस और नायिका भेद का ग्रन्थ है । पद्माकर ने दतिया के अनूप गिरि उपनाम हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में 'हिम्मत बहादुर बिरदावली' की रचना की । स० १८९० वि० में कानपुर मे इनका स्वर्गवास हुआ ।

पद्माकर एक विद्वान और सहृदय कवि थे । उनमे वीरता और भक्ति की भावना भी थी, अपने जीवन मे इन्होने काफी ठाट-बाट और विलास भी किया। एक समय था जब इनके साज-समाज के साथ चलने पर लोग यह समझते थे कि कोई राजा जा रहा है, परन्तु अन्त मे इनकी सारी भावनाएँ भक्ति मे तल्लीन हो गई । इसीलिए पद्माकर को वीर, शृगार और भक्ति तीनो ही रसों की सिद्धि प्राप्त हुई थी । वीररस 'हिम्मत बहादुर बिरदावली' मे और भक्ति 'प्रबोध पचासा' तथा 'गगालहरी' मे देखने को मिलती है । परन्तु इनका मूलभाव शृगार था । शृगार का बड़ा मार्मिक वर्णन पद्माकर ने किया है । शृंगार के अनेक भावों का चित्रण इनकी रचना मे मिलता है । शृंगार के वियोग और सयोग दोनो पक्षो के चित्रण मे पद्माकर दक्ष है । शृगार की विभिन्न स्थितियों का चित्रण इन्होने किया है । शृगार के प्रसग मे इनके फाग और होली के वर्णन अत्यन्त प्रसिद्ध है । उसके दो उदाहरण दृष्टव्य है—

वा अनुराग की फाग लखौं जहँ रागति राग किसोर–किसोरी ।
त्यौं पद्माकर घाती घली फिरि लाल ही लाल गुलाल की झोरी ।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसरि रंग से बोरी ।
गोरिन के रंग भीजिगो साँवरो साँवरे के रंग भीजिगै गोरी ।।

\+ \+ \+

फाग की भीर अमीरन में गहि गोबिन्द लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पद्माकर ऊपर नाइ अबीर की झोरी ।

छीन पीतम्बर कमर ते सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर आइयौ खेलन होरी ।।

सयोग के समान ही वियोग का मार्मिक चित्रण इन्होंने खीचा है । पद्माकर के ये चित्र घनानद के समान विदग्ध न होकर बड़े सहज और स्वाभाविक है । ऐसे ही चित्रों के कारण पद्माकर अत्यन्त लोकप्रिय कवि के रूप मे प्रख्यात हुए । इनके इन भावचित्रों मे सुन्दर शब्द-योजना और आलकारिक छटा है । अनुप्रास पद्माकर का प्रिय अलकार था और वह इनके छदो मे सर्वत्र देखा जा सकता है । वियोग शृगार के चित्रण मे भी सहज आलकारिता मिलती है । उदाहरण के रूप में निम्नलिखित छद दृष्टव्य है—

पीतम के संग ही उमगि उड़ि जैबे को
न एति अंग अगनि परन्द पखियाँ दई ।
कहै पद्माकर जे आरती उतारे चौर ढारै
श्रम हारे पै न ऐसी सखियाँ दई ।
देखि दृग द्वैही सों न नेकहु अघैये इन
ऐसे झुकाझुक में झपाक झखियाँ दई ।
कीजै कहा राम-श्याम आनन बिलोकिबे
बिरंचि न अनन्त अँखियाँ दई ।।

चपला चमाकै चहुँ ओरन ते चाहभरी
चरजि गई तो फेरि चरजन लागी री ।
कहै पद्माकर लवगन की लोनी लता लरजि
गई तो फेरि लरजन लागी री ।
कैसे धरौं धीर बीर त्रिविध समीरै तन
तरजि गई तो फेरि तरजन लागी री ।
घुमड़ि घमड घटा घन की घनेरी अबै
गरजि गई तो फेरि गरजन लागी री ।।

पद्माकर की प्रतिभा प्रकृति और मानव जीवन सौन्दर्य एव विलास वर्णन में विशेष रूप से प्रवृत्त हुई है । दोनों मे ही पद्माकर की गहरी रुचि थी । जहाँ इन्होंने मानव जीवन के विलास का मार्मिक उद्घाटन किया है,

वही प्रकृति के भण्डार का भी इन्होने विशद चित्रण किया है । इनके षट्ऋतु वर्णन प्रसिद्ध है । ऋतु-वर्णन मे इनके छंद परम्परा और नवीनता दोनों को लेकर चलने वाले है । वसंत ऋतु का वर्णन करने वाले निम्नलिखित छद इस बात को स्पष्ट करेंगे—

और भाँति कुंजन में गुंजरत भौर भीर
और डौर झौरन के बौरन के ह्वै गयो ।
कहै पद्माकर सु औरे भाँति गलियान
छलिया छबीले छैल और छवि छ्वै गये ।
औरे भाँति बिहग समाज मैं अवाज होति
अबै ऋतुराज के न आज दिन द्वै गये ।
औरे रस औरे रति औरे राग औरे रंग
औरे तन औरे मन औरे बन ह्वै गये ।।

पात बिन कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के
परत न चीन्हे जेये लरजत लुंज है ।
कहै पदमाकर विसासी या वसंत के सु
ऐसे उतपात गात गोपिन के भुज है ।
ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजौ
भलो एरि सों हमारे ह्याँ न फूलो बन कुंज है ।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं ।

इस प्रकार यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि पद्माकर शब्द-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य के अद्भुत पारखी थे । उन्होने अपनी रचनाओं में दोनों ही प्रकार का अविस्मरणीय चित्रण किया है ।

घनानंद

घनानंद रीतिकाल के रीतिमुक्त धारा के महत्वपूर्ण कवि है । रीतिकाल के होते हुए भी इन्होने रीति-परंपराओं से मुक्त होकर अपनी रचनाएँ की है । घनानंद का जन्म स० १७४६ वि० माना जाता है । इनका जन्म स्थान यद्यपि

निश्चित नहीं है, पर कुछ लोग उसे बुलंदशहर मानते हैं । ये भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली के समकालीन बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के यहाँ मीर मुंशी का काम करते थे । ये अच्छे गायक और श्रेष्ठ कवि थे । बादशाह के दरबार में रहने वाली सुजान नामक वेश्या पर इनका उत्कट प्रेम था । इनके गायन की ख्याति के कारण किसी समय दरबार में बादशाह ने इनसे गाने के लिए कहा । परन्तु इन्होंने टाल दिया और कुछ लोगों ने उस समय बादशाह से कहा कि सुजान के कहने पर ये गायेंगे । दरबार में सुजान बुलाई गई और उसके कहने पर घनानंद ने बहुत सुन्दर गाया । गाते समय इन्होंने सुजान की ओर मुख करके और बादशाह की ओर पीठ की । बादशाह जहाँ इनके गाने से प्रसन्न हुआ, वहीं इनकी बेअदबी से अत्यन्त क्रोधित हुआ, और इन्हें दरबार से निकाल दिया । सुजान दरबार की नर्तकी थी, साथ-ही-साथ अत्यन्त सुंदरी भी थी । घनानंद उस पर प्रेम करते थे और इनका विचार था कि वह भी इनसे उसी प्रकार प्रेम करती है । जब ये दरबार से निकाले गये तो इन्होंने सुजान को साथ चलने के लिए कहा, किन्तु उसने इनकार कर दिया ।

इस घटना के उपरान्त घनानंद का जीवन परिवर्तित हो गया और ये वृंदावन चले गये । वहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर कृष्णभक्ति में तल्लीन रहने लगे और वही रहकर इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की । जो कवित्त और सवैया, छंदों के साथ-साथ पद रचना से युक्त हैं । ब्रजभूमि में आकर जो कृष्ण-भक्ति संबंधी छंद इन्होंने लिखे, उनमें भी सुजान शब्द का प्रयोग बहुत अधिक है । इससे स्पष्ट है कि ये सुजान को भूल नही सके । और अन्ततोगत्वा इनका सुजान-प्रेम-कृष्ण प्रेम में परिणत हो गया । वृंदावन के जीवन में ये भक्ति में तन्मय जीवन व्यतीत करते थे । सं० १८१७ में जब अहमद शाह अब्दाली का दूसरा आक्रमण मथुरा पर हुआ, उस समय लोगों ने अब्दाली के सिपाहियों को बादशाह के मीर मुंशी के रूप में घनानंद का पता दे दिया, जब ये सिपाही घनानंद के पास पहुँचे तो उन्होंने इनसे जर यानी धन मांगा । इस पर घनानंद ने उसका उल्टा रज-रज करते हुए दो-तीन मुट्ठी धूल उनकी ओर फेंक दी । इस बात पर सिपाही अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने घनानंद का बध कर दिया । इस प्रकार घनानंद ने अपने प्रेम और भक्ति-साधना में कठिन कष्ट सहन किया ।

घनानंद की ४१ रचनाएँ बतलाई जाती हैं, जो अधिकांश मुक्तक हैं। कुछ सवैया, घनाक्षरी में और कुछ पदों के रूप में। इन रचनाओं में अधिकाँश वही छोटी-छोटी रचनाएँ हैं जिनसे इनका प्रेम भाव और भक्ति प्रकट होती है। इनकी भक्ति निम्बार्क सम्प्रदाय के आधार पर है। उसका वियोग पक्ष जितना मार्मिक है, उतना संयोग पक्ष नही। रीतियुग के अधिकांश कवियों ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों पर लिखा है, परन्तु किसी का भी वियोग पक्ष घनानंद के वियोग की तुलना नही कर सकता। उनकी वियोग भावना गहरी, विह्वलता से परिपूर्ण है। अनेक स्थलों पर उपालंभ, आत्म-निवेदन, अनन्यता, समर्पण, खीझ आदि के भाव बड़े मार्मिक ढंग से प्रकट हुए हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छंद दृष्टव्य है—

"अंतर हौं किधौं अँतर हौं दृग फारि
फिरौं कि अभागिनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं,
अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं।
जो घन आनंद ऐसी रुची तौ कहा
बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरनी
में धसौं कि अकासहिं चीरौं॥"

घनानद भावों के कुशल शिल्पी थे। इनकी-अभिव्यंजना प्रौढ़ और प्रभावशाली है। आलंकारिक समृद्धि के साथ-साथ उसमें मार्मिकता विद्यमान है। इनकी उक्तियों में मौलिकता और चमत्कार प्राप्त होता है। घनानंद की मुख्य कला इनकी उक्तियों की लाक्षणिकता और व्यंजकता में है। चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य के संपादन के लिए घनानंद ने रूपक, प्रतीप, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, व्यतिरेक, श्लेष और यमक जैसे अलंकारों का बड़ा सहज और सुन्दर प्रयोग किया है। इनका शब्दचयन भी बड़ा विदग्ध और कलापूर्ण है। इनके शब्द अर्थ-गौरव से युक्त होने के साथ-साथ ब्रजभाषा की मुहावरेदानी और मार्मिकता से युक्त है। कहा जा सकता है कि इनके छंदों में भाव और अभिव्यक्ति दोनों एक दूसरे से समन्वित, ओत-प्रोत और सुशोभित हैं। घनानंद जसे प्रौढ सवैया और घनाक्षरी छंद लिखने वाले बहत कम कवि मिलते हैं।

जो स्थान बिहारी द्वारा रचित विदग्ध और मार्मिक सतसई के दोहों को प्राप्त है, वही स्थान घनानंद के सवैयों और घनाक्षरी छंदों को मिलना चाहिए। इस बात के प्रमाण के लिए निम्नलिखित छंद दिये जा रहे हैं—

कहाँ ऐतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै,
चिंता की चुहल बगियै रहति है।
तपनि बुझावनि अनन्दघन जान बिन,
होरी सी हमारी हिये लगियै रहति है॥

\+ \+ \+

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जुबियोग तिहारे।
मातो फिरै न, घिरै अवलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारें।
ह्वै अभिलाषनि, पात-निपात कहे हिय-सूल उसासनि-डारें।
है पतझार बसंत दुहूँ घन आनंद एक ही बार हमारें॥

\+ \+ \+

पाती-मधि छाती छत लिखि न लिखाये जाहिं,
काती लै बिरह घाती की ने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि नहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती रातो दसनि के जाल-ज्वाल-माल है।
जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तोऽब,
आवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह भीजी बातें रसना पै उर-आँच लागे,
जागैं घन-आनंद ज्यों पुंजनि-मसाल हैं॥

घनानंद रूप और गुन पर उलझने वाले व्यक्ति थे। ऐसा लगता है कि उनके मन में रूप की अनंत पिपासा भरी थी। उसी की अभिव्यक्ति इन्होंने सुजान के रूप के चित्रण में की है। यह रूप-चित्रण अत्यन्त बारीक और मार्मिक है जिसके अन्तर्गत् न केवल रूप के, रंग के आभा का समावेश है, वरन् क्रिया-

कलाप, बात-चीत और प्रभाव का भी विशद उद्‌घाटन है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित छंद उद्धृत हैं—

अंग-अंग-आभा संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंजरं गनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम छबि हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रबाह रूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंद घन जान प्यारी,
अकि धौं विचित्रताईं मो चित चिते रे की॥

\+ \+ \+

झलकैं अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
लटलोल कपोल कलौल करैं, कलकंठ बनी जल जावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परि है मनौ रूप अबै घर च्वै।

\+ \+ \+

पानिप पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैं।
लाज लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं।
अंजन-अंजित श्री घन-आनंद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं।
तेरी सौं ऐ री सुजान तो आँखिन देखि ये आँखिन आवति मोपैं।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि घनानंद एक सिद्ध कवि थे। शब्द की अद्‌भुत परख उनमें थी और उनकी बिम्ब रचना में कला और अनुभूति दोनों का विदग्ध समन्वय था। यही कारण है कि उनके छंद उत्कृष्ट कविता के उदाहरण है, और घनानंद का स्थान हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य में अद्वितीय है।

द्विजदेव

अयोध्या के राजा महाराज मानसिंह द्विजदेव उपनाम से कविता करते थे। इनके पिता का नाम दर्शन सिंह था। इनका जन्म १० दिसम्बर

१८२० ई० को हुआ था । ये संस्कृत, हिन्दी और फारसी के अच्छे विद्वान थे। महाराजा मानसिंह युद्ध कुशल व्यक्ति थे । इनको 'रायबहादुर' की उपाधि मिली थी । महाराजा मानसिंह के आश्रय में अनेक कवि रहे । इनमें लछिराम विशेष प्रसिद्ध हैं । द्विजदेव ब्रजभाषा में बड़ी सुन्दर कविता करते थे । इन्होंने दो ग्रंथ लिखे 'शृंगार बतीसी' और 'शृंगार-लतिका' । 'शृंगार लतिका' की 'सौरभी टीका' वीरेश जी ने की । यह ब्रजभाषा में है ।

द्विजदेव का जीवन बड़े साहसपूर्ण कार्यों में व्यतीत हुआ । १८५७ की राज्य क्रांति में इन्होंने अंग्रेज परिवारों की प्राणरक्षा की । परन्तु अन्त में अंग्रेजी शासन की कोपदृष्टि इन पर पड़ी, और ये वृंदावन चले गए । वृंदावन में माधुर्य भक्ति के प्रभाव में आकर इन्होंने शृंगारपूर्ण कृष्ण काव्य की रचना की। वहीं सन् १८६१ में इनका देहावसान हुआ था । द्विजदेव पर माधुर्य भक्ति और रीति शृंगार के ग्रंथों का पूरा प्रभाव पड़ा । इन्होंने यद्यपि रीति संबंधी कोई लक्ष्य ग्रंथ नही लिखा, परन्तु उसका पूरा प्रभाव इनके ग्रंथों में मिलता है । शृंगार वर्णन तथा ऋतु-चित्रण के इनके छंद बड़े ललित है । भाषा की प्रांजलता तथा भाव सुकुमारता इनकी रचना का सहज गुण है । इनके छंदों में बड़ा ललित प्रवाह और भावों की मोहक व्यंजना हुई है । इनकी शब्द-योजना से यह स्पष्ट होता है कि शब्द-प्रयोग का इन्हें विशिष्ट कौशल प्राप्त था । इनके अलंकार प्रयोग में भी सहज-सौन्दर्य देखने को मिलता है । एक उदाहरण इस प्रसंग में नीचे दिया जाता है—

"औरे भाँति कोकिल, चकोर ठौर-ठौर बोलैं,
औरे भाँति सबद पपीहन के ह्वै गए ।
औरे भाँति पल्लव लिए हैं वृंद-वृंद तरु,
और छवि पुंज-पुंज कुंजन उनै गये ।
औरे भाँति सीतल सुगंध मंद डोलै पौन,
द्विजदेव देखत न ऐसी पल द्वै गये ।
औरै रति औरे रंग औरे साज और सँग,
औरे बन औरे छन औरे मन ह्वै गये ।।"

द्विजदेव ने जो नखशिख-सौन्दर्य-चित्रण किया है, वह अपने ही ढंग का है । अंगों का जो वर्णन है, वह इनकी सौन्दर्यानुभूति का उत्कृष्ट द्योतक है ।

उपमानों की परंपरा को ग्रहण न करते हुए भी द्विजदेव पर रीतिकालीन शृंगार और सौन्दर्य चेतना का अमिट प्रभाव है। नख-शिख के प्रसंग में इनके द्वारा किया गया अंगुलियों का वर्णन दृष्टव्य है—

"कर कंकन साज मयंक मुखी
मुख पंक न कौन के लावति है।
द्विजदेव हि लाई कै पाणि विभूषन
का को हियो न हिलावति हैं।
उपमान वै कौन जिन्हें सजि कै,
अंगुरी अँगुरीन दिखावति है।
मेंहदी निज हाथन लाय कहौ,
द्युति कौनि की हाथ न लावति है।"

इस छंद में आभूषण युक्त हाथों और मेंहदी रचे करों का चित्रण अत्यन्त सुन्दर है। साथ ही सुन्दर मुहावरों का भी प्रयोग है। द्विजदेव ने जो अलंकारों का वर्णन किया है, वह भी इनकी सहज प्रतिभा का परिचायक है। ये अलंकार इतने चमत्कार लाने के लिए प्रयुक्त नहीं हुए, जितने भाव के मार्मिक उद्-घाटन के लिए हुए है। इस प्रकार की रचना करने में द्विजदेव अप्रतिम ठहरते है। भ्रांति अलंकार का एक उदाहरण निम्नलिखित छंद में दृष्टव्य है, और मेरे विचार से भ्रांति का ऐसा सहज उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। कवि ने इसमें सावन में फागुन की भ्राति का चित्रण किया है। छंद इस प्रकार है—

"राती भई भूमि सो तौ, जावक की छाप,
चूनरी की दाप रंग ऐसो बरसै अशेष घन।
साखी पग पातन गुलाल गुंफ से हैं खिले,
ये हैं जरतारी जिन्हें जानत अबीर कन।
द्विजदेव ऐसी छवि देखि-देखि दौरों कहा,
फागुन के भोरे वृजमंडल के सारे जन।
सहज सखी इन सँग, राधा जू पधार्यो आजु,
सावन में सूझे ही सुभावन अशोक वन॥"

इस प्रकार काव्य-प्रतिभा में द्विजदेव अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटि के कवि हैं। जितने छंद इन्होंने लिखे हैं, वे सब के सब बड़े मार्मिक हैं। इनके छंदों में

सहज प्रवाह है, और सहज परिचित शब्दावली में भाव की मार्मिक अनुभूति इनके छंदों में होती है । इस दृष्टि से 'शृंगार लतिका' के छंद एक से एक बढ़कर हैं । एक छंद नीचे दिया जाता है—

"घाघरी राती सो हाती लखे,
सिर सारी सजे सुधा सोभ समूली ।
प्रेम पीयूष पगी उमगी,
द्विजदेव कदंब की डारन झूली ।
भौंर की भीर बुलाय रही,
जड़ आप मरंदन के रस भूली ।
हार सिंगार की बीथिन में सो तौ,
हार सिंगार के फूल सी फूली ।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रीति-काव्य-परंपरा में यद्यपि अनेक कवि आते है, परन्तु प्रतिभा की उत्कृष्टता और वाणी का विलास, जैसा सेनापति, बिहारी और द्विजदेव मे मिलता है, वैसा अन्यत्र नही । इस परंपरा के ये सर्वश्रेष्ठ कवि है ।

—भगीरथ मिश्र

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर

केशवदास

रामचन्द्रिका

१. मंगलाचरण

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै कलंक-अंक भवसीस ससि सम,
राखत हैं केशोदास दास के वपुख को।
माँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुख जोवै गजमुख सुख को॥ १॥

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि-कहि हारे सब, काहू न लही लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहूँ न बखानी काहू पै गई।
वर्णै पति चारिमुख पूत वर्णै पांच मुख,
नाती वर्णै षटमुख तदपि नई-नई॥ २॥

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावै न बतावै और उक्ति को।
दरशन देत, जिन्हे दरशन समुझै न,
नेति-नेति कहै वेद छाँडि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम-राम,
रटत रहत न उरझ पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को॥ ३॥

२. सीता स्वयम्बर

खंडपरशु को सोभिजै, सभा मध्य कोदंड ।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार बरिबंड ।। ४ ।।

सोभित मंचन की अवली गजदंतमई छवि उज्ज्वल छाई ।
ईश मनौ वसुधा में सुधारि सुधाधरमंडल मंडि जोन्हाई ।।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई ।
देवन स्यों जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंवर देखन आई ।। ५ ।।

पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं ।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे वेदन बताए हैं ।
अजर अमर अज अंगी और अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कौने गुण पाए हैं ।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिबे कों,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आए हैं ।। ६ ।।

दिकपालन की, भुवपालन की, लोकपालन की किन मातु गई च्वै ।
ठाढ़ भए उठि आसन तें, कहि केशव, शंभुशरासन को छ्वै ।
काहू चढ़ायो न, काहू नवायो न, काहू उठायो न आँगुरहू द्वै ।
स्वारथ भो न भयो परमारथ, आए ह्वै बीर, चले बनिता ह्वै ।। ७ ।।

काहू को न भयो कहूँ, ऐसो सगुन, न होत ।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उदोत ।। ८ ।।

राम

कछु राजत सूरज अरुन खरे । जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे ।
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै । चोर चकोर चिता-सी लसै ।। ९ ।।

लक्ष्मण

अरुण-गात अति प्रात पद्मिनी-प्राणनाथ भय ।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोकप्रेममय ।।

परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट ।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिकमयूषपट ।।
कै श्रोणित-कलित कपाल यह किल कापालिक काल को ।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिन के भाल को ।। १०।।

पसरे कर कुमुदिनि काज मनो ।
किधौ पद्मनि को सुख देन घनो ।
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे ।
जिय जानि चकोर फँदान ठगे ।। ११ ।।

राम

व्योम में मुनि देखिए अतिलाल श्रीमुख साजहीं ।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजही ।
पद्मरागनि की किधौ दिवि धूरि पूरित-सी भई ।
सूर वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई ।। ९ ।।
चढ्यो गगनतरु धाय, दिनकर-बानर अरुणमुख ।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन ।। १२ ।।

लक्ष्मण

जहीं वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज ।
तही कियो भगवंत बिन, संपति शोभा साज ।। १३ ।।

चहुँभाग बाग तड़ाग । अब देखिए बड़भाग ।
फल फूल सों संयुक्त । अलि यों रमै जनु मुक्त ।। १४ ।।

राम

ते न नगरि ना न ागरी, प्रतिपद हंसक हीन ।
जलजहार शोभित न जहँ, प्रगट पयोधर पीन ।। १५ ।।

सातहु दीपनि के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे व्रत भंग भयो, सो कहो, अब केशव को धनु ताने ।।
शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गए घनश्याम बिहाने ।।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुण्य पुराने ।। १६ ।।

आइ गए ऋषिराजहि लीने। मुख्य सतानंद विप्र प्रवीने।
देखि दुवौ भए पाँयनि लीने। आशिष शीरष बासु लै दीने ॥ १७ ॥

विश्वामित्र

केशव ये मिथिलाधिप है जग मे जिन कीरति बेलि बई है।
दानकृपान-विधानन सो सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है।
अग छ सातक आठक सो भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयो अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगमई है ॥ १८ ॥

जनक

जिन अपनो तनस्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हो उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥ १९ ॥

लक्ष्मण

जन राजवंत। जग योगवन।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत ॥ २० ॥

राम

सब छत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए विजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निशि बासर केशव लोकन को तमतेज भगै।
भवभूषण भूपित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहूँ थलहूँ परिपूरण श्रीनिमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै ॥ २१ ॥

जनक

यह कीरति और नरेशन मोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिए ऋषिराई।
सब गाँउँ छ सातक की ठकुराई ॥ २२ ॥

विश्वामित्र

आपने-आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालै सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत है भुव पालि न जाई।

भूपति की तमहीं धरि देहि बिदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषन को भवि भूषण भू-तन तैं तनया उपजाई ।। २३ ।।

जनक

इहि बिधि की चित चातुरी, तिनको कहा अकत्थ ।
लोकन की रचना रुचिर, रचिबे कौं समरत्थ ।। २४ ।।

ये सुत कौन के सोभहिं साजे ?
सुन्दर श्यामल गौर विराजे ।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ ।
कै कमला विमला पति कोऊ ।। २५ ।।

विश्वामित्र

सुन्दर श्यामल राम सु जानो । गौर सुलक्ष्मण नाम बखानो ।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ । सूरज के कुलमंडन दोऊ ।। २६ ।।

नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चार कुमार ।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ।। २७ ।।

दानिन के शील पर दान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिए सुभाय के ।
दीप-दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के ।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय साधु मन वच काय के ।
देह धर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ।। २८ ।।

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो ।
अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो ।।

जनक

ऋषि है वह मन्दिर माँझ मँगाऊँ ।
गहि ल्यावहिं हौं जनयूथ बुलाऊँ ।। २९ ।।

वज्र ते कठोर है, कैलाश तें विशाल काल
दंड तें कराल, सब काल काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोकि हारे देव सब,
छोड़ चन्द्रचूड़ एक और को चढ़ावई ।।
पन्नग प्रचंड-पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि पर्वत-प्रभा न मान पावई ।।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि,
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ।। ३० ।।

विश्वामित्र

सुनि रामचन्द्र कुमार। धनु आनिए इक बार।
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोक-लोक बढ़ाव ।। ३१ ।।

रामचन्द्र कटिसौं पटु बाँध्यो। लीलयैव हर को धनु साँध्यो।
नेकु ताहि कर पल्लव सो छ्वै। फूलमूल जिम टूक करयो द्वै ।। ३२ ।।
उत्तम-गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो ।।
ऐंचो जहीं तबहीं कियो संयुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभु को साँचो शरासन कीनो ।। ३३ ।।

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंड कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल,
पालि ऋषिराज के बचन परचंड को।
सोधु दै ईश को, बोधु जगदीश को,
क्रोधु उपजाइ भृगुनन्द बरिबंड को।
बाँधि वर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग, धनु—
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को।। ३४ ।।

सीता जू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की हृदयावलि भूपाल ।। ३५ ।।

३. बनमार्ग में राम

विपिन-मारग राम विराजही ।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं ।।
विविध श्रीफल सिद्ध मनो फल्यौ ।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो ।।३६।।

कौन हौ, कित तें चले कित जात हौ, केहि काम जू ।
कौन की दुहिता, बहू, कहि कौन की यह वाम जू ।।
एक गाउँ रहौ कि साजन मित्र बन्धु बखानियै ।
देश के, परदेश के, किधौं पंथ की पहिचानियै ।।३७।।

किधौ यह राजपुत्री, वरही वरी है किधौ,
उपदि वर्‌यो है यहि सोभा अभिरत हौ ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसोदास ।
जात तपोवन सिव वैर सुमिरत हौ ।
किधौ मुनि शापहत, किधौ ब्रह्मदोषरत,
किधौ सिद्धियुत, सिद्ध परम विरत हौ ।
किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हें, किधौं तुम,
हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ ।।३८।।

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी
रूप रूरे लसै देहधारी मनौ
भूरि भागीरथी भारती हंसजा
अंस के हैं मनौ भाग भारे भनौ ।।
देवराजा लिए देवरानी मनौ
पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए ।
पच्छ दू संधि संध्या सधी हैं मनौ
लच्छिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिए ।।३९।।

तड़ाग नीर-हीन ते सनीर होत केसौदास
पुंडरीक-झुंड भौंर-मंडलीन मंडहीं ।

तमाल बल्लरी समेत सूखि-सूखि के रहे
ते बाग फूलि-फूलि कै समूल सूल खंडहीं ।।
चितै चकोरिनी चकोर,मोर मोरनी समेत,
हंस हंसिनी समेत, शारिका सबै पढ़ै ।
जही-जही विराम लेत रामजू तहीं-तही,
अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ै ।। ४० ।।

घाम को राम समीप महाबल ।
सीतहि लागत है अति सीतल ।।
ज्यों घन-संयुत दामिनि के तन,
होत है पूषन के कर भूषन ।। ४१ ।।

मारग की रज तापित है अति ।
केशव सीतहि सीतल लागति ।।
ज्यौं पद-पंकज ऊपर पाँयनि ।
दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि ।। ४२ ।।

प्रति पुर औ, प्रति ग्राम की, प्रति नगरन की नारि ।
सीताजू को देखिकै, बरनत हैं सुखकारि ।।४३।।

वासों मृगअंक कहै, तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानिए ।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजै, वह
कलानिधि, तुहूँ कला-कलित बखानिए ।।
रत्नाकर के है दोऊ केसव प्रकासकर
अम्बर-विलास कुबलय हितु मानिए ।
वाके अति सीत कर, तुहूँ सीता सीतकर,
चन्द्रमा-सी चन्द्रमुखी सब जग जानिए ।। ४४ ।।

कलित कलंक-केतु केतु-अरि, सेत गात,
भोग-योग को अयोग, रोग ही को थल सौं ।।
पून्यौई को पूरन पै आन दिन ऊनो-ऊनो,
छन-छन छीन होत छीलर को जल सौं ।

चन्द्र सौं जो बरनत रामचन्द्र की दुहाई,
सोई मति मंद कवि केसव मुसल सौं।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि केवल कमल सौं। ४५ ॥

एक कहै अमल कमल मुख सीताजू कौ,
एक कहै चंद्र-सम आनँद को कद री।
होइ जौ कमल तौ रयनि मे न सकुचै री,
चन्द जौ तौ बासर न होइ द्युति मद री ॥
बासर ही कमल रजनी ही में चन्द्र मुख,
बासर हू रजनि विराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द,
तातें मुख मुखै, सखी, कमलौ न चन्द री ॥ ४६ ॥

सीतानयन चकोर सखि रविवंशी रघुनाथ।
राम चन्द्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ ॥ ४७ ॥

बहु बाग तड़ाग तरंगिनि तीर,
तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका इक बैठत है सुख पाय
बिछाय तहाँ कुस-कास थली ॥
मग कौ श्रम श्रीपति दूर करैं
सिय के शुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव
चंचल चारु दृचगंल सों ॥ ४८॥

श्री रघुवर के इष्ट, अश्रु-बलित सीता-नयन।
साँची करी अदृष्ट झूँठी उपमा मीन की ॥ ४९ ॥

मारग यौं रघुनाथ जू, दुख सुख सब ही देत।
चित्रकूट पर्वत गए, सोदर सिया समेत ॥ ५० ॥

४. पंचवटी-स्थित राम

केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर ।
पर्णकुटी पावन करी, रामचन्द्र रणवीर ।। ५१ ।।

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोलै ।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी, वन-वन प्रति नाचति डोलै ।।
सारी शुक पंडित, गुणगण-मंडित, भावनि मैं अरथ बखानै ।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानै ।। ५२ ।।

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीच घटी हूँ घटी, जग जीव यतीन की छूटी तटी ।।
अघ-ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वन पंचवटी ।। ५३ ।।

शोभीत दंडक की रुचि बनी । भाँतिन-भाँतिन सुन्दर धनी ।
सेव बड़े नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ।। ५४ ।।

बेर भयानक-सी अति लगै । अर्क-समूह जहाँ जगमगै ।।
नैनन को बहुरूपन ग्रसे । श्री हरि की जनु मूरति लसे ।। ५५ ।।

राम

पांडव की प्रतिमा सम लेखौ ।
अर्जुन भीम महामति देखौ ।।
है सुभगा सम दीपति पूरी ।
सिन्दुर औ तिलकावलि रूरी ।। ५६ ।

राजति है यह ज्यौं कुल कन्या ।
धाइ विराजति है सँग धन्या ।।
केलि-थली जनु श्रीगिरिजा की ।
शोभ धरे शितकंठ प्रभा की ।। ५७ ।।

निपट पतिव्रत धरणी । जग जन के दुख हरणी
निगम सदा गति सुनिए । अगति महापति गुनिए ।। ५८ ।।

विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति ।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥

सीताहरण

छिद्र ताकि छुद्रराज लकनाथ आइयो ।
भिक्षु जानि जानकी सो भीख को बलाइयो ॥
अति निकट गोदावरी पाप-संहारिणी ।
चल तरंग तुङ्गावली चारु संचारिणी ॥
अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिणी ।
बहु नयन देवेश शोभा मनो धारिणी ॥ ५९ ॥

रीति मनो अविवेक की थापी ।
साधुन की गति पावत पापी ॥
कजज की मति-सी बड़ भागी ।
श्री हरिमन्दिर सौ अनुरागी ॥

सोच पोच मोचिकै सकोच भीम बेख को ।
अंतरिच्छही हरी ज्यों राहु चन्द्ररेख को ॥ ६० ॥

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की,
शिखा कै धूमयोनि मध्य रेखा गृधाधाम की ।
चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बगरूरे माँहि,
संबर छोड़ाइ लई कामिनी कै काम की ।
पाखंड की श्रद्धा कै मठेश बस एकादसी,
लीन्ही कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की ।
केशव अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी, तैसी,
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥ ६१ ॥

सीता

हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर ।
लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि वीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु वेगि मोहीं ।
मार्तंडवंश-यश की सब लाज तोहीं ॥ ६२ ॥

रामविलाप

निज देखौं नहीं शुभगीतहिं सीतहिं कारण कौन कहौ अब हीं ।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यो जहीं ।।
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौ तेहि त्रास डेराइ रहीं ।
अब है यह पर्णकुटी किधौ और किधौ वह लक्ष्मण होइ नहीं ।। ६३ ।।

सरिता एक केशव सोभ रई ।
अवलोकि तहाँ चकवा चकई ।।
उर में सिय प्रीति समाइ रही ।
तिन सों रघुनायक बात कही ।। ६४ ।।

अवलोकत हे जबही-जबही ।
दुख होत तुम्हे तबही-तबही ।।
वह बैर न चित्त कछू धरिए ।
सिय देहु बताइ कृपा करिए ।। ६५ ।।
शशि के अवलोकन दूरि किए ।
जिनके मुख की छवि देखि जिए ।।
कृत चित्त चकोर कछूक धरौ ।
सिय देहु बताय सहाय करौ ।। ६६ ।।

कहि केशव याचक के अरि चपक शोक अशोक किए हरि कै ।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते लीक्षण जानि तजे डरिकै ।।
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरिकै ।
सिय कौ कछु सोध कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै ।।६७।।

हिमाशु सूर सो लगै सो बात वज्र-सी बहै ।
दिशा लगे कृशानु ज्यो विलेप अंग को दहै ।।
विशेष कालराति सो कराल राति मानिए ।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिए ।। ६८ ।।

रसिकप्रिया

केशव एक समय हरि-राधिका आसन एक लसे रंग-भीने ।
आनँद सों तिय आनन की दुति देखत दर्पण में दृग दीने ।
भाल के लाल में बालबिलोकन ही भरि लालन लोचन लीने ।
शासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीने ।।१।।

केशव सूधे विलोचन सूधी विलोकनि सों अवलोकै सदाई ।
सूधिये बात सुनै समझै कहि आवत सूधिये बात सदाई ।।
सूधी सुहाँसी, सुधाकर सों मुख, सोधि लई वसुधा की सुधाई ।
सूधे स्वभाव सबै सजनी, बस कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई ।।२।।

चपला पट मोर किरीट लसै मघवाधनु शोभ बढ़ावत हैं ।
मृदु गावत आवत बेणु बजावत मित्र मयूर नचावत है ।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं ।
घनश्याम घने घन वेष धरे जु बने वन ते ब्रज आवत है ।।३।।

बैठी हुती वृषभानुकुमारि सखीन की मंडली मंडि प्रवीनी ।
लै कुम्हिलानो सो कंज परी इक पायन आइ गुवारि नवीनी ।
चंदन सों छिरकी वह वा कहँ पान दये करुणारस भीनी ।
चंदन चित्र कपोलन लोपि कै अंजन आँजि विदा करि दीनी ।।४।।

सखि सोहन गोप सभा महँ गोबिन्द बैठे हुते द्युति को धरिकै ।
जनु केशव पूरन चन्द्र लसै चितचोर चकोरन को हरिकै ।
तिनको उलटो करि आन दियो किहुँ नीरज नीर नयो भरि कै
कहि काहे तै नेकु निहारि मनोहरि फेरि दियो कलिका करिकै ।।५।।

खंजन हैं मन-रंजन केशव रंजन नैन किधौं, मति जी की ।
मीठी सुधा कि सुधाधर की द्युति दंतन की किधौ दाड़िम ही की ।
चंद भलो मुख चंद किधौ सखि सूरति काम कि कान्ह की नीकी ।
कोमल पंकज कै पदपंकज प्राण पियारे कि मूरति पी की ।।६।।

दसन-बसन माँह दरसै दसन दुति,
बरषि मदन रस करत अचेत हौ ।

झाईं झलकति लोल लोचन कपोलन में,
मोल लेत मन क्रम वचन समेत हौ ।
भौंहैं कहे देत भाउ कहो मेरी भावती के,
भाव ते छबीले लाल मौन कौन हेत हौ ।
केशव प्रकाश हास हँसि कहा लेहुगे जू,
ऐस ही हँसे ते तौ हिये को हरि लेत हौ ।।७।।

माखन के चोर मधु चोर दधि दूध चोर,
देखत हौं देखत ही हियो हरि लेत हैं ।
पुरुष पुराण अरु पूरण पुराण इन्हें,
पुरुष पुराण सु कहत किहि हेत हैं ।
केशोदास देखि-देखि सुरन की सुन्दरी वे,
करती विचार सब सुमति समेत हैं ।
देखि गति गोपिका की भूलिजात निज गति,
अगतिन कैसे धौं परम गति देत हैं ।।८।।

सोहैं दिवाय-दिवाय सखी इकबारक कानन आन बसाये ।
जाने को केशव कानन ते कित ह्वै हरि नैननि माँझ सिधाये ।
लाज के साज धरे ही रहे सब नैनन लै मन ही सों मिलाये ।
कैसी करौ अब क्यों निकसै ही हरेई हरे हिय में हरि आये ।।९।।

काल्हि की ग्वारि तौ आजहु तै न सम्हारति केशव कैसेहु देहै ।
सीरी ह्वै जात उठै कबहूँ जरि जीव रहै कै रही रुचि रे है ।
कोरि बिचार बिचारित है उपचारन के बरसै सखि मेहै ।
कान्ह बुरो जिन मानौ तिहारी बिलोकन मैं बिस बीस बिसे है ।।१०।।

देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आजु,
रूप की सी माला राधा रूपक सुहाये री ।
नूपुर के सुरन के अनुरूप तानै लेत,
पगतल ताल देत अति मन भाये री ।
ऐसे मैं दिखाई दीन्ह औचक कुँवर कान्ह,
जैसे है ये गात तैसे जात न बताये री ।
केशोदास कहैं परै अलज सलज से न,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आये री ।।११।।

गोप बड़े-बड़े बैठे अथाइनि केशव कोटि सबै अवगाहीं ।
खेलत बालक जाल गलीन मैं बाल बिलोकि-बिलोकि बिकाहीं ।
आवति जाति लुगाई चहूँ दिसि घूँघट में पहिचानत छाँही ।
चन्द सो आनन काढ़ि कहाँ चली सूझत है कछू तोहिं की नाहीं ।।१२।।

केशव कुँवर वृषभानु की कुँवरि वन,
देवता ज्यों वन उपवन विहरति है ।
कमला ज्यों थिर न रहति कहूँ एक ठौर,
कमलानुजा ज्यों कमलनि ते डरति है ।
काली ज्यों न केतकी के फूल सूँघ सीताजू,
ज्यों निसिचर मुख चन्द देखि ही जरति है ।
वदन उघारता ही मदन सुयोधन ही,
द्रौपदी ज्यों नाउँ मुख तेरोई ररति है ।।१३।।

घोर घने घन घोरत सज्जल उज्जल कज्जल की रुचि राँचैं ।
फूले फिरैं इभ से नभ पाइक सावन की पहिली तिथि पाँचै ।
चौहूँ दिसा तड़िता तड़पैं डरपैं बनिता कहि केशव पाँचैं ।
जानि मनौं ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल कुटुम्बिन नाचैं ।।१४।।

केशोदास लाख-लाख भाँतिन के अभिलाख,
बारि दै री बावरी न बारि हिये होरी सी ।
राधा हरि केरी प्रीति सब ते अधिक जानि,
रति रतिनाथ हूँ मैं देखो रति थोरी सी ।
तिनहूँ मैं भेद न भवानि हूँ पै पार्‌यो जाइ,
भारती की भारती है कहिबे को भोरी सी ।
एकै गति एकै मति एकै प्राण एकै मन,
देखिबे को देह द्वै है नैनन की जोरी सी ।।१५।।

कविप्रिया

ऋतुवर्णन

शीतल समीर शुभ गंगा के तरंगयुत,
अंबर बिहीन वपु बासुकि लसंत है ।
सेवत मधुपगण गजमुख परभृत,
बोल सुन होत सुखी संत औ असंत है ।
अमल अदल रूप मंजरी सुपद रज,
रंजित अशोक दुख देखत नसंत है ।
जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब,
शिव को समाज किधौं केशव बसंत है ।।१६।।

चंडकर कलित बलित बर सदागति,
कंदमूल फल फूल दलनि को नासु है ।
कीच बीच बचैं मीन ब्याल बिल, कोलकुल,
द्विरद दरीन दिनकृत को बिलासु है ।
थिर चर जीवन हरन बन बन प्रति
केशोदास मृगसिर श्रवन निवासु है ।
धावत बली धनुस सोहत निपानि सर,
शवर समूह कैधों ग्रीषम प्रकासु है ।।१७।।

भौंहैं सुर चाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराय जोति तडित रलाई है ।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है ।
केशोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है ।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ।।१८।।

सोभा को सदन ससि बदन मदन कर,
बंदै नर देव कुबलय बरदाई है ।

मानस पद उदार मसति हंसक मार,
दीपति जलजहार दिसि दिसि धाई है ।
तिलक चिलक चारु लोचन कमल रुचि,
चतुर चतुरमुख जग–जिय भाई है ।
अमल अंबर नील लीन पीन पयोधर,
केशोदास शारदा कि शरद सुहाई है ॥१९॥

अमल कमल दल लोचन, ललित गति,
जारत समीर, सीत भीति दीह दुख की ।
चंद्रक न खायो जाय, चंदन न लायो जाय,
चंद न चितयो जाय प्रकृति बपुष की ।
घट की घटित जाति घटना घटी हू घटी,
छिन छिन छीन छबि रबिमुख सुख की ।
सीकर तुषार खेद सोहत हेमंत ऋतु,
किधौं केशोदास प्रिया प्रीतम बिमुख की ॥२०॥

सरस असमसर सरसिज लोचनि, बि–
लोकि लोक लीक लाज लोपिबे को आगरी ।
ललित लता सुबाहु जानि जून ज्वान बाल,
बिटप उरनि लागै उमँगि उजागरी ।
पल्लव अधर मधु मधुपन पीवत ही,
रचित रुचिर पिक रुत सुख सागरी ।
इति विधि सदागति बास बिगलित गात,
शिशिर की सोभा किधौं बारनारि नागरी ॥२१॥

स्फुट

फूले पलास बिलास थली कहिं,
केसवदास प्रकास न थोरे ।
शेष अमेय मुखानल की जनु,
ज्वाल विसाल चली दिवि बोरे ।
किंसुक श्री सुकतुण्डनि की रुचि,
राचे रसातल में चित चोरे ।

चंचुनि चापि चहूँ दिसि डोलत,
चार चकोर अँगारनि भोरे ।२२।
मैन ऐसे मन मृदु, मृदुल मृणालिका के,
सूत ऐसी स्वरध्वनि, मनहिं हरति है ।
दार्‌यो कैसो बीजदंत, पात से अरुण ओंठ,
देखि केशवदास दृग आनँद भरति है ।
येरी बीर तेरी मोंहि भावत भलाई ताते,
बूझति हों तोंहि और बूझत डरति है ।
माखनि सी जीभ, मुख कंज सो कोंवर, तासों,
काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है ।।२३।।

अनही ठीक को ठग, जाने ना कुठौर ठौर,
ताही पै ठगावै ठेलि जाही को ठगतु है ।
याके डर तू निडर ! डग डगति डरि,
डर के डरनि डगै डौंगी ज्यों डगतु है ।
ऐसो बसोबास ते उदास होहि केशवदास,
केशो न भजतु कहि काहे को भजतु है ।
झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई, काहू,
साँचे को कियो है ताते साँचो सो लगतु है ।।२४।।

मेह के हैं सखि आँसू, उसासनि साथ निशा सु विसासिनि बाढ़ी ।
हास गयो उड़ि हंसनि ज्यों, चपला सम नींद गई गति काढ़ी ।
चातक ज्यों पिव पीव रटै, चढ़ि ताप तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी ।
केशव वाकी दशा सुनिहौ अब आगि बिना अँग अंगनि डाढ़ी ।२५।

जा दिन ते वृषभानु लली ही अली मिलये मुरलीधर ते ही ।
साधन साधि अगाधि सबै बुधि शोधि जे दूत अभूतन में ही ।
ता दिन ते दिनमान दुहून की केशव आवति बात कहे ही ।
पीछे अकास प्रकासै ससी चढ़ि प्रेम समुद्र बढ़ै पहिले ही ।।२६।।

राधा के अंग गोराई-सी और गोराई बिरंचि बनावन लीनी।
कै सत बुद्धि विवेक सों एक अनेक बिचारनि मैं दृग दीनी ।
बानिक तैसी बनी न बनावत केसव प्रत्युत ह्वै गई हीनी ।
लै तब केसरि केतिक कंचन चम्पक के दल दामिनि कीनी ।।२७।।

सेनापति

कवित्त रत्नाकर

श्लेष-वर्णन

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं
बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है।
जोए पद मन कौं हरष उपजावति है
तजै को कनरसै जो छंद सरसति है॥
अच्छर हैं विशद करति उषै आप सम
जातै जगत की जड़ताऊ बिनसति है।
मानौं छबि ताकी उदवत सबिता की सेना-
पति कबि ताकी कबिताई बिलसति है॥१॥

तुकन सहित भले फल कौं धरत मूधे
दूर कौ चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के।
लागत विविध पक्ष सोहत है गुन संग
स्रवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के॥
सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुभत नीके
बेग बिधि जात मन मोहैं नर नारी के।
सेनापति कवि के कबित्त बिलसत अति
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के॥२॥

ब्यापी देस देस बिस्व कीरति उज्यारी जाकी
सीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
सुर-नर-मुनि जाके दरस कौं तरसत
राखत न खर तेजै कला की निकाई है॥
करन के जोर जीति लेत हैं निसा कलंकै
सेवक हैं तारे ताकी गनती न पाई है।

राजा रामचंद अरु पून्यौ कौं उदित चंद
सेनापति बरनी दुहू की समताई है ।।३।।
सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
मोर मन हरषावै अति अभिराम है ।
जीवन अधार बड़ी गरज करनहार
तपति हरनहार देत मन काम है ।
सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति
पावत अधिक तन मन बिसराम है ।
संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ
आयौ घनस्याम सखि मानौ घनस्याम है ।।४।।
सदा नंदी जाकौ आसा कर है विराजमान
नीकौ घनसार हू तै बरन है तन कौ ।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौ ।।
जो है सब भूतन कौ अंतर निवासी रमैं
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौ ।
जानि बिन कहै जानि सेनापति कहैं मानि
बहुधा उमाधव कौ भेद छाँड़ि मन कौं ।।५।।
गीतहिं सुनावै तिलकन झलकावैं भुज
मूलन छपावै द्वारका हू के पयान ही ।
बैसनव भेष भगतन की कमाई खाहिं
सेवैं हरि साहिबै न साँच है निदान ही ।।
देखि कै लिबास नीची सबन की नारि होति
मोहि कै बिकच करैं मन धन ध्यान ही ।
सेनापति सुमति बिचारि देखौ भली भाँति
कलि के गुसाई मानौं मँगना समान ही ।।६।।
कुबिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई
पी रहै दुहू के तन मन वारि दीने हैं ।

वे तौ एक रति जोग, हम एक रति जोग
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं ।।
कूबरी यौं कल पैहै हम इहाँ कल पैहैं
सेनापति स्यामैं समुझैं यौं परबीने है ।
हम वे समान ऊधौ कहौ कौन कारन तैं
उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं ।।७।।

कोट गढ़ गिरि ढाहैं जिनकौ दुरग ना हैं
बल की अधिक छबि आरवी सहित हैं ।
देखियै जिन मैं सदा गति अति मंद भारी
मानौं ते जलद ते जकरि राखे नित हैं ।।
डगनि चलत महा करिनी के बस राखे
सब कहैं सिंधुर हैं दरद रहित हैं ।
सेनापति बरने हैं महाराज राम जू कै
हाथी हैं सुधारे असवारी के उचित हैं ।।८।।

तेरे नीकी वसुधा है वाके तौ न वसुधा है
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै ।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहसगुनी
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै ।।
सेनापति सदा बड़ी साहिबी अचल तेरी
निसि-दिन चंद चल जगत बखानियै ।
महाराज रामचंद चंद तै सरस तू है
तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनियै ।।९।।

ऋतु-वर्णन

बृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है ।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत है ।।

सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यौं न पात खरकत है ।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौंनौं
घरी एक बैठि कहूँ घामैं बितवत है ।।१०।।

देखैं छिति अंबर जलै है चारि ओर छोर
तिन तरवर सब ही कौं रूप हर्‌यौ है ।
महा झर लागै जोति भादव की होति चलै
जलद पवन तन सेक मानौ पर्‌यौ है ।।
दारुन तरनि तरैं नदी सुख पावैं सब
सीरी घनछाँह चाहिबौई चित धर्‌यौ है ।
देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु
ग्रीषम विषम बरषा की सम कर्‌यौ है ।।११।।

गगन-अँगन घनाघन तैं सघन तम,
सेनापति नैंक हू न नैन मटकत है ।
दीप की दमक, जीगनान की झमक छाँड़ि
चपला चमक और सौं न अटकत हैं ।।
रवि गयौ दबि मानौं ससि सोऊ धसि गयौ,
तारे तोरि डारे से न कहूँ फटकत हैं ।
मानौ महा तिमिर तै भूलि परी बाट तातैं
रबि, ससि, तारे कहूँ भूले भटकत है ।।१२।।

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ कै ।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति,
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै ।
घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रबि गयौ खोइ कै ।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै ।।१३।।

सीत कौ प्रबल सेनापति कोपि चढ्यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराइ कै ।
हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कोकन मैं जाइ कै ॥
धूम नैंन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाइ रहैं नैक सुलगाइ कै ।
मानौ भीत जानि, महा सीत तै पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै ॥१४॥

सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है,
पूस बीते होत सून हाथ-पाइ ठिरि कै ।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति पाई कछू सोचि कै सुमिरि कै ॥
सीत तै सहस-कर सहस-चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै ।
जौ लौ कोक कोकी कौ मिलत तौं लौ होति राति,
कोक अधबीच ही तै आवत है फिरि कै ॥१५॥

राम-रसायन

सुरतरु सार की, सवाँरी है विरंचि पचि,
कंचन खचित चितामनि के जराइ की ।
रानी कमला कौं पिय-आगम कहनहारी,
सुरसरि-सखी, सुख-दैनी, प्रभु-पाइ की ॥
बेद मैं बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी,
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की ।
देव-दुख-दंडन, भरत-सिर-मंडन, वे
बंदौं अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की ॥१६॥

कीनौ बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं ।
अब तू जरा मैं पर्‌यौ मोह पींजरा मैं, सेना

पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं ॥
चितहिं चिताउ भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसौ ताउ, न बचाउ है शरीर कौं ।
लेह देह करि कै , पुनीत करि लेह देह,
जीभै अवलेह देह सुरसरि नीर कौ ॥१७॥

गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि,
कै रहौ जू गिरि चित्रकूट कुटी छाइ कै ।
जातै दारा नसी, बास तातै बारानसी, किधौ
लुंज ह्वै कै वृन्दाबन कुंज बैठ जाइ कै ॥
भयौ सेतु अंध ! तू हिए कौ हेतु बंध जाइ,
धाइ सेतुबंध के धनी सौ चित लाइ कै ।
बसौ कंदरा मै, भजौ खाइ कंद रामै, सेना-
पति मंद ! रामै मति सोचौ अकुलाइ कै ॥१८॥

पान चरनामृत कौ, गान गुन गनन कौ,
हरि-कथा सुनि सदा हिय कौ हुलसिबौ ।
प्रभु के उतीरन की, गुदरीयौ चीरन की,
भाल, भुज, कंठ, उर छापन कौ लसिबौ ॥
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
बृन्दाबन-सीमा तैं न बाहिर निकसिबौ ।
राधा-मन-रंजन की शोभा नैन-कंजन की,
माल गरे गुंजन की, कुंजन कौ बसिबौ ॥१९ ।

धातु, सिला, दार, निरधार प्रतिमा कौं सार,
सो न करतार तू बिचार बैठि गेह रे ।
राखु दीठि अंतर, कछू न सून-अंतर है,
जीभ कौ निरन्तर जपाउ तू हरे हरे ॥
मंजन बिमल सेनापति मन-रंजन तू,
जानि कै निरंजन परम पद लेह रे ।

कर न संदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
हा है बीच देहरे ? कहा है बीच देह रे ।।२०।।

एरे मन मेरे, खोए बासर घनेरे, करि
जोष अभिलाष अजहुँ न उह रत है ।
तजि कै बिवेक, राम-नाम कौ सरस रस,
सेनापति महा मोह ही मै बिहरत है ।।
जद्यपि दुलभ तऊ और अभिलाष, दैव
जोग तै सुलभ, ज्यौं घुनच्छर परत है ।
कीजियै कहाँ लौ तेरे मन की बड़ाई, जातै
मरेन के जीवे कौं मनोरथ करत है ।।२१।।

गंगामाहात्म्य

यह कलिकाल बढ्यौ दुरित कराल, देखि
आई दुचिताई, सुचिताई सब लूट ही ।
हम तपहीन, जाइ तरैं कत दीन, तोसी
दूसरी नदी न, देखि फिरे चहुँ खूँट ही ।।
सेनापति सिव-सिर-संगिनी, तरंगिनी तू,
तोहि अचवत पचवत कालकूट ही ।
तजि कै अपाइ, तीर बसै सुख पाइ, गंगा !
कीजै सो उपाइ, तेरे पाइ ज्यौ न छूटही ।।२२।।

यह सुरसरि, कौन करै सुर सरि याकी,
भू पर जो ऊपर है तीरथ समाज के ।
धरम अधार धार याकी निरधार दाता
याही कै तरैंगे सेनापति सुभ काज के ।।
को कहै बखानि, अवलोकन करत जाके,
सोक न रहत, ओक होत सुख साज के ।
थोक नसै पापन के, दोक जल-कन चाखैं,
ओक भरि पियै लोक जीतै जमराज के ।।२३।।

कालतैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै
ब्याल उर माल, आगि भाल सब ही समैं ।
ब्याधि के अरंग ऐसे ब्यापि रह्यौ आधौ अंग,
रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं ।
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
पैयती न बाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं ।।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जौ पै गंगा रानी कौं न पानो होतौ सीस मैं ।।२४।।

कोह कौं घटाइ, लोभ मोहन मिटाइ काम
हू तैं निबटाइ करि, करति उधार है ।
देखैं बारि दीन, दारिदी न होत सपने हू,
पावै राज बसु, ताके बस बसुधा रहै ।।
रोग करै दूरि, भोग राखै भरपूरि, एक
अमर करन मूरि मानहू सुधा रहै ।
धरम अधार, सेनापति जानी निरधार,
गंगा तेरी धार कामधेनु तैं दुधार है ।।२५।।

बिहारी

सतसई

भक्ति

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ॥ १॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होतु प्रयागु॥ २॥

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए बृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥ ३॥

मकराकृति गोपाल कैं, सोहत कुंडल कान।
धर्‌यौ मनौ हिय-धर समरु,ड्यौढ़ी लसत निसान॥ ४॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्यामु सुभग-सिरमौरु।
बिनु हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु॥ ५॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों त्यों उज्जलु होइ॥ ६॥

करौ कुबत जगु कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होउगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल॥ ७॥

संयोग-शृंगार

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता-रंग॥ ८॥

कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं, दामु रुपैया होतु॥ ९॥

खौरि-पनिच भृकुटी-धनुषु, बधिकु समरु, तजि कानि।
हनतु तरुन-मृग तिलक-सर-सुरक-भाल भरि तानि॥ १०॥

रससिंगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन ॥ ११ ॥

जोग-जुगति सिखये सबै, मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता, काननु सेवत नैन ॥ १२ ॥

सायक-सम मायक नयन, रँगे त्रिबिध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥ १३ ॥

पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर के चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहै, आनन ओप उजास ॥ १४ ॥

भाल लाल बेदी ललन, आखत रहे बिराजि।
इन्दुकला कुज मैं बसी, मनौ राहु-भय भाजि ॥ १५ ॥

लौनें मुँह दीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना दीठि ॥ १६ ॥

सहज सेत पँचतोरिया, पहिरत अति छबि होति।
जलचादर के दीप लौ, जगमगाति तन-जोति ॥ १७ ॥

औरै-ओप कनीनिकनु, गनी घनी-सिरताज।
मनी धनी के नेह की, बनी छनी पट लाज ॥ १८ ॥

घाम घरीक निवारियै, कलित ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर तमाल तरु, मिलित मालती-कुंज ॥ १९ ॥

निसि अँधियारी नील पटु, पहिरि चली पिय गेह।
कहौ दुराई क्यौं दुरै, दीप-सिखा सी देह ॥ २० ॥

हरषि न बोली लखि ललनु, निरखि अमिलु सँग साधु।
आँखिनु ही मै हँसि धर्‌यौ, सीस हियैं धरि हाथु ॥ २१ ॥

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहै नटि जाइ ॥ २२ ॥

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात ॥ २३ ॥

उन हरकी हँसि कै इतै, इन सौंपी मुसकाइ ।
नैन मिलै मन मिलि गए, दोऊ मिलवत गाइ ॥ २४ ॥

उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह ।
बौरी लौ दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह ॥ २५ ॥

डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल ।
कंपि किसोरी दरसि कै, खरै लजाने लाल ॥ २६ ॥

समरस-समर-सकोच-बस, बिबस न ठिक ठहराइ ।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकति आइ ॥ २७ ॥

सटपटाति सै ससिमुखी, मुख घूँघट-पटु ढाँकि
पावक-झर सी झमकि कै, गई झरोखा झाकि ॥ २८ ॥

वियोग-शृंगार

हरि-छबि-जल जब तैं परै, तब तैं छिनु बिछुरै न ।
भरत ढरत बूड़त तरत, रहटघरी लौ नैन ॥ २९ ॥

प्रजर्‌यौ आगि बियोग की, बह्यौ बिलोचन-नीर ।
आठौ जाम हियौ रहै, उड़्यौ उसास-समीर ॥ ३० ॥

फिरि फिरि चितु उत ही रहतु, टुटी लाज की लाव ।
अंग-अंग-छबि-झौंर मैं, भयो भौर की नाव ॥ ३१ ॥

पिय कै ध्यान गही गही, रही वही ह्वै नारि ।
आपु आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ॥ ३२ ॥

बिरह-जरी लखि जीगननु, कह्यौ न उहि कै बार ।
अरी आउ भजि भीतरै, बरसत आजु अँगार ॥ ३३ ॥

कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्राननु के ईस ।
बिरह-ज्वाल जरिबो लखैं, मरिबौ भई असीस ॥ ३४ ॥

यह बिनसतु नगु राखि कै, जगत बड़ौ जसु लेहु ।
जरी विषम जुर जाइयैं, आइ सुदरसनु देहु ॥ ३५ ॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ।। ३६ ।।

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि ।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ।। ३७ ।।

प्रकृति

छकि रसाल-सौरभ सने, मधुर माधुरी-गंध ।
ठौर-ठौर झौंरत झँपत, भौंर-झौर मधु-अंध ।। ३८ ।।

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन-तन माँह ।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौ चाहति छाँह ।। ३९ ।।

पावस-घन-अँधियार महँ, रह्यौ भेदु नहिं आनु ।
रात द्यौस जान्यौ परतु, लखि चकई चकवानु ।। ४० ।।

अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चंद ।
समै आइ सुन्दरि सरद, काहि न करत अनंद ।। ४१ ।।

ज्यौं ज्यौं बढ़ति बिभावरी, त्यौं त्यौं बढ़त अनंत ।
ओक ओक सब लोक-सुख, कोक-सोक हेमंत ।।४२।।

लगत सुभग सीतल किरन, निसि-सुख दिन अवगाहि ।
माह ससी-भ्रम सूर-त्यौ, रहति चकोरी चाहि ।। ४४ ।।

सघन कुंज-छाया सुखद, सीतल सुरभि-समीर ।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै, उहि जमुना के तीर ।। ४४ ।।

चुवत स्वेद मकरंद-कन, तरु-तरु-तर बिरमाइ ।
आवत दच्छिन देस तैं, थक्यौ बटोही बाइ ।। ४५ ।।

धुरवा होहिं न अलि उठैं, धुवाँ धरनि चहुँ कोद ।
जारत आवत जगत कौं, पावस-प्रथम पयोद ।। ४६ ।।

बहुज्ञता

मोर-मुकुट की चंद्रिकनु, यौं राजत नँदनंद ।
मनु ससिशेखर की अकस, किय सेखर सत चंद ।। ४७ ।।

सनि-कज्जल चख-झख-लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु ।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु ॥ ४८ ॥

मंगलु बिंदु सुरंग, मुख ससि, केसरि-आढ़ गुरु ।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत ॥ ४९ ॥

मोहन मूरति स्याम की, अति अदभुत गति जोइ ।
बसत सुचित-अंतर तऊ, प्रतिबिंबितु जग होइ ॥ ५० ॥

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जग काँचो काँच सौ ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥ ५१ ॥

जोग-जुगति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन ।
चाहत पिय-अद्वैतता, काननु सेवत नैन ॥ ५२ ॥

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन-बिस्तारन-काल ।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग-रंग भूपाल ॥ ५३ ॥

कौड़ा आँसू-बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल ।
कीने बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत ॥ ५४ ॥

अन्योक्ति

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहि काल ।
अली कली ही सौ बँध्यौं, आगै कौन हवाल ॥ ५५ ॥

स्वारथु सुकृतु न, श्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
बाज पराए पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ॥ ५६ ॥

काल्हि दसहरा बीतिहै, धरि मूरख, जिय लाज ।
दुर्‌यौ फिरत कत द्रुमनि मैं, नीलकंठ बिनु काज ॥ ५७ ॥

नहिं पावसु ऋतुराज यह, तजि तरुवर चित-भूल ।
अपतु भए बिनु पाइहै, क्यौ नवदल फल फूल ॥ ५८ ॥

पटु पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई संग ।
सुखी, परेवा पुहुमि मैं, एकै तुही बिहंग ॥ ५९ ॥

इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल ।
ह्वै है फेरि बसंत ऋतु, इन डारनु वे फूल ॥ ६० ॥

प्रेम

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥ ६१ ॥

गिरि तै ऊँचे रसिक-मन, बूड़े जहाँ हजारु।
बहै सदा पसुनरन कौ, प्रेम-पयोधि पगारु ॥ ६२ ॥

जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनौ दीपक-देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरियै जितौं सनेह ॥ ६३ ॥

क्यौ बसियै क्यों निबहियै, नीति नेह-पुर माँहि।
लगालगी लोइन करै, नाहक मन बँधि जाँहि ॥ ६४ ॥

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति ॥ ६५ ॥

प्रकीर्ण

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ॥ ६६ ॥

इक भीजैं, चहलै परै, बूड़ैं बहैं हजार।
कितै न औगुन जग करै, बै-नै चढ़ती बार ॥ ६७ ॥

लिखनि बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥ ६८ ॥

चटक न छाँड़तु घटत हूँ, सज्जन-नेहु गँभीरु।
फीकौ परै न, बरु फटै, रँग्यौ चोल-रँग चीरु ॥ ६९ ॥

जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन तौ, घरक नरक हूँ कीन ॥ ७० ॥

●

मतिराम

स्फुट

बिंब-से अरुन अति अमल अधर पर,
मंद बिलसत चारु चाँदनी सुबास हैं;
कासौं जाय बरनि बनक नाकबेसरि की,
ललित बिलोकनि पै बिबिध बिलास है;
कवि 'मतिराम' पाय सहज सुबास आम,
भौंरनि की भीर न तजत आम-पास है;
कहा दरपन कैसै पावत बदन जोति,
चंद जाको चेरो अरबिंद जाको दास है ।।१।।

रावरे नेह कौ लाज तजी अरु गेह के काज सबै बिसराए;
डारि दियो गुरु लोगनि को डर, गाँव चबाय मैं नाव धराए ।
हेत कियो हम जो तो कहाँ तुम तो मतिराम' सबै बहराए;
कोऊ कितेक उपाय करौ कहूँ होत है आपने, पीव पराए ।।२।।

मोहन-लला कौ मनमोहनी बिलोकि बाल,
कसि करि राखति है उमगे उमाह कौ;
सखिनि की दीठि कौं बचाय कै निहारत है,
आनँद प्रवाह बीच पावत न थाह कौ ।
कवि 'मतिराम' और सब ही के देखत ही,
ऐसी भाँति देखति छिपावत उछाह कौं;
वे ही नैन रूखे-से लगत और लोगनि कौ,
वेई नैन लागत सनेह-भरे नाह कौं ।।३।।

जाके कोस भीतर भुवन करतार ऐसो,
जाके नाभिकुंड मैं कमल विकसत हैं;
कहैं 'मतिराम' सब थावर जंगम जग,
जाकी दिग्ध उदर-दरी मैं दरसत है ।

जाके एक-एक रोम कूपनि मैं कोटिन,
अनंत ब्रह्मांडनि को वृंद बिलसत है;
राव भाव सिंह तेरी कहाँ लौं बड़ाई करौं,
ऐसो बड़ो प्रभु तेरे मन मैं बसत है ।।४।।

तेरो कह्यो सिगरो मैं कियो निसि-द्यौस तप्यो तिहुँ तापन पाई।
मेरो कह्यो अब तू करि, जो सब दाह मिटे परिहै सियराई ।।
संकर-पायनि मै लगि रे मन, थोरे बातनि सिद्धि सुहाई।
आक-धतूरे के फूल चढाए तें रीझत है तिहुँ लोक के साईं ।५।

मोर पखा 'मतिराम' किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई;
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल-डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि, को न बिलोकि भई बस माई;
वा मुख की मधुराई कहा कहौ, मीठी लगै अंखियान लुनाई ।।६।

बरषा-सी लागी निसि बासर बिलोचननि,
बाढ़ो परवाह भयो नावनि उतरिबौ।
सहौ जाय कौन पै सुकवि 'मतिराम' अति,
बिरह अनल ज्वाल जालन ते जरिबौ।
जैयत समीप तो उड़ैयत उसासनि सौ,
हमकौ तौ होतु उत हेरत हहरिबौ।
।कयौ कहा चाहत सु करो न कुँवर कान्ह,
रह्यो अब वाको उपचारनि को करिबौ ।।७।

पूरन चंद उदोत कियौ घन फूलि रही बन जाति सुहाई;
भौरनि की अवली कल कैरव-कुंजनि पुंजन मैं मृदु गाई।
बाँसुरी ताननि काम के बाननि, लै 'मतिराम' सबै अकुलाई;
गोपिन गोप कछू न गने, अपने-अपने घर तै उठि धाई ।।८।

आनन-पूरन चंद लसै अरबिंद-बिलास-बिलोचन पेखे;
अंबर पति लसै चपला छबि अंबुद मेचक अंग उरेखे।
काम हूँ तैं अभिराम महा 'मतिराम' हिए निहचै करि लेखे;
तै बरनैं निज बैनन सौ सखी मैं निज नैनन सौ जनु देखे ।।९।

जा दिन तैं चलिबे की चरचा चलाई तुम,
ता दिन तैं वाके पियराई तन छाई है।
कहै 'मतिराम' छोड़े भूषन, बसन, पान,
सखिन सौ खेलनि, हँसनि बिसराई है।
आई रितु सुरभि, सुहाई प्रीति वाके चित्त,
ऐसे मैं चलौ तो लाल रावरी बड़ाई है।
सोवत न रैन-दिन, रोवति रहति बाल,
बूझे तैं कहत मायके की सुधि आई है ॥१०॥

जमना के तीर बहै सीतल समीर तहाँ,
मधुकर करत मधुर मंद सोर है,
कबि 'मतिराम' तहाँ छबि सौ छबीली बैठी,
अगन ते फैलत सुगंध के झकोर है।
पीतम बिहारी की निहारिबे की बाट ऐसी,
चहूँ ओर दीरघ दृगनि करी दौर है,
एक ओर मीन मानो, एक ओर कंज-पुंज
एक खंजन, चकोर एक ओर है ॥११॥

जाके अंग-अंग की निकाई निरखत आली,
वारने अनंग की निकाई कीजियतु है,
कवि 'मतिराम' जाकी चाह ब्रजनारिन को,
देह अँसुवन के प्रवाह भीजियतु है।
जाके बिनु देखे न परत कल तुमहूँ कौ,
जाके बैन सुनत सुधा-सी पीजियतु है,
ऐसे सुकुमार प्रिय नंद के कुमार को यों,
फूलन के मालन की मारु दीजियतु है ॥१२॥

कुंदन कौ रंगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई;
आंखिन मैं अलसानि, चितौनि मे मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लहै मुसकानि-मिठाई;
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई ॥१४॥

ध्यावैं सुरासुर-सिद्धि समाज, महेसहु आदि महामुनि ग्यानी;
जोग मैं, जंत्र मैं, मंत्र मैं, तंत्र मैं, गावैं सदा स्रुति, सेष भवानी ।
संकट-भाजन आनन की दुति पूरन दंड उदंड सो जानी,
ध्याय सदा पद पंकज को, 'मतिराम' तबै रसराज बखानी ।।१'५।

भक्ति

मो मन तम-तोमहि हरो, राधा को मुख-चंद ।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौ, नँदनंदन आनंद ।१।

हिये बसत मुख हँसत हौ, हमको करत निहाल ।
घट-घट व्यापी ब्रह्म तुम प्रकट भये नंदलाल ।२।

मै रसाल की मजरी, क्यों न करी करतार ।
सुंदर श्यौन समीप जौ, राखैं नंदकुमार ।३।

विषयनि ते निरवेद बर, ज्ञान जोग ब्रत नेम ।
बिफल जानियो ये बिना, प्रभु-पद-पंकज प्रेम ।।४।

स्याम रूप अभिराम अति, सकल बिमल गुन धाम ।
तुम निसि-दिन 'मतिराम' की, मति बिसरौ मतिराम ।५।

तलफत घाइनि जीव को, कौन जियावत आनि ।
जो न होति उन दृगनि में, सुधा मधुर मुसकानि ।।६।।

बरनत साँच असंग कै, तुमको बेद गुपाल ।
हिये हमारे बसत हो, पीर न पावत लाल ।।७।।

राधा चरन सरोज नख, इद्र किये ब्रज चंद ।
मोर मुकुट चंद्रिकनि तूँ, चख चकोर आनंद ।।८।।

अंग ललित सित रग पट, अंगराग अवतंस ।
हस वाहिनी कीजिए, वाहन मेरो हंस ।।९।।

शृंगार

खेलत मार सिकार है, डोरे पास समेत ।
नैन मृगन सों बाँधि कै, नैन मृगन गहि लेत ।।१।।

रूप जाल नंदलाल के, परि करि बहुरि छुटैन ।
खंजरीट मृग-मीन से, ब्रजबनितनि के नैन ।।२।।

भौंह कमान कटाछ सर, समर भूमि बिच लैन ।
लाज तजे हूँ दुहुन के, सजल सुभट से नैन ।।३।।

बिन देखे दुख के चले, देखे सुख के जाहिं ।
कहो लाल उन दृगन के, अँसुवा क्यों ठहराहिं ।।४।।

तुरत दीठि लग जायगी, हौ बिलखी अति आनि ।
अनखन दैकै कीजिए, अनख भरी अँखियानि ।।५।।

नील नलिन दल सेज मैं, परी सुतनु तनु देह ।
लसै कसौटी मैं मनों, तनक कनक की रेह ।।६।।

दुबराई गिरि जातु है, कंकन कामिनि बाँह ।
उपदेस न ठहरात ज्यों, दुरजन के उर माँह ।।७।।

तेरी औरै भाँति की, दीप सिखा-सी देह ।
ज्यों-ज्यों दीपति जगमगै, त्यों-त्यों बाढ़त नेह ।।८।।

रूप सदन मिलि तन बसन, रदन रुचिर रुचि होति ।
दामिनि में बिधु बिंब जनु, बिधु में दामिनि जोति ।।९।।

तनु आगे को चलतु है, मन वाही मग लीन ।
सलिल-सोत में ज्यों चपल, चलत चढ़ाऊ मीन ।।१०।।

बाल निहाल भई लखै, ललित लाल मुख इंदु ।
मनु पियूष बरषा भई, नैननि झलके बिंदु ।।११।।

भरी भाँवर साँवरे, रास रसिक रस जान ।
तिनही मैं मन भँवतु है, ह्वै बौडर को पान ।।१२।।

कंप प्रसेद बढ़ै, चढ़ै, भौंह मनो भव-चाप ।
अपने पिय सों जानियत, सपने करति विलाप ।।१३।।

मुख बिधु छिन-छिन यों रहै, एक द्यौस ही माँझ ।
पून्यो हुती प्रभात अब, होति अमावस साँझ ।।१४।।

कहा कहे रूखे बचन, सातिक भाव अपार ।
तरुनि छपायो चहति तू, तिन की ओट पहार ।।१५।।

तेरी मृदु मुसक्यानि लखि, सरद जोन्ह सम रंग ।
बाढ़त मोद पयोधि कें, दृगनि तरंग उतंग ।।१६।।

ज्वलित ज्वाल सी जोन इहि, डारति अङ्ग उलीचि ।
भई पियूष मरीचि की, मोकों मरिच मरीचि ।।१७।।

देह दीप दीपति दिपै, बदन चंद की ज्योति ।
दामिनि दुति मुसिक्यानि मृदु, सुख की खानि उदोति ।।१८।।

हरनि रूप बिरहीनि कौ, जलद जाल बगराइ ।
बाँधि-बाँधि बाननि बधत, मार-बधक सम आइ ।।१९।।

मुकुत हार हरि के हियें, मरकत मनिमय होति ।
पुनि पावत रुचि राधिका, मुख मुसक्यानि उदोति ।।२०।।

लाल तिहारे बिरह नित, छीन बाल के अङ्ग ।
जानति हौ चाहति दियो, निज सायुज्य अनंग ।।२१।।

●

भूषण

वन्दना

बिकट अपार भव-पंथ के चले को श्रम-
हरन, करन-विजना-से ब्रह्म ध्याइए ।
यहि लोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए ।।
अलिकुल-कलित-कपोल, ध्यान ललित,
अनंदरूप-सरित मैं भूषण अन्हाइए ।
पाप-तरू--भंजन, बिघन-गढ़-गंजन
जगत-मन-रंजन, द्विरदमुख गाइए ।।१।।

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि ।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि ।।
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि ।
जै सुरक्त जै रक्तबीज बिड्डाल-बिहंडिनि ।।
जै जै निसुंभ सुंभद्दलनि, भनि भूषन जै जै भननि ।
सरजा समथ्थ शिवराज-कहँ, देहि-बिजै जै जग जननि ।।२।।

रायगढ़-वर्णन

जा पर साहि तने सिवराज सुरेस कि ऐसी सभा सुभ साजे ।
यों कवि भूषण जंपत हैं लखि संपति को अलकापति लाजै ।।
जा मधि तीनिहु लोक कि दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै ।
वारि पताल सी माची मही अमरावति की छबि ऊपर छाजै ।।१।।

मनिमय महल शिवराज के इमि रायगढ़ मैं राजहीं ।
लखि जच्छ किन्नर असुर सुर गंधर्व हौंसनि साजहीं ।।
उतंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदंग जु बाजहीं ।
घन-समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गल गाजहीं ।।२।।

मुकतान की झालरिन मिलि मनि-माल छज्जा छाजही ।
संध्या समय मानहुँ नखत गन लाल अम्बर राजहीं ।।
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय है ।
मानो गगन-तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय है ।।३।।

भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहुप रागन की प्रभा ।
प्रभु पीत पट को प्रकट पावत सिन्धु मेघन की सभा ।।
मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलन संग मैं ।
विकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग मैं ।।४।।

कितहूँ विसाल प्रबाल जालन जटित अंगन भूमि है ।
जहँ ललित बागनि द्रुम लतनि मिलि रहै झिलमिल झूमि है ।।
चंपा चमेली चारु चन्दन चारिहू दिसि देखिए ।
लवली लवंग यलानि केरे लाखि हीं लगि लेखिए ।।५।।

पुन्नाग कहुँ कहुँ नागकेसरि कतहुँ बकुल अशोक हैं ।
कहुँ ललित अगर गुलाब पाटल-पटल बेला थोक है ।।
कितहूँ नेवारी माधवी सिगारहार कहूँ लसै ।
जहँ भाँति भाँतिन रंग रंग बिहंग आनन्द सों रसै ।।६।।

शिवाजी प्रशस्ति

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंत चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है ।।
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है ।
तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ।।१।।

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि-मिलि आपुस में गावत बधाई है ।

भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ-जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है ।।
किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगंबर बजाई है ।
सिवा पूछै सिव सों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है ।।२।।

ऊँचे घोर मंदर के अदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती है ।
कंदमूल भोग करै कंदमूल भोग करै,
तीन बेर खाती ते वै तीन (बीन) बेर खाती है ।।
भूषन सिथिल अग भूषन सिथिल अग,
बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती है ।
'भूषन' भनत शिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती है ।।३।।

उतरि पलग ते न दियो है धरा पै पग,
तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती है ।
अति अकुलाती मुरझाती न छिपाती गात
बात व सुहाती बोले अति अनखाती है ।।
'भूषन' भनत सिह साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुनै अरिनारी बिललाती है ।
कोऊ करें धाती कोऊ रोती पीट छाती धरै,
तीन बेर खाती तेऊ तीन (बीन) बेर खाती है ।।४।।

सोंधे को अधार किसमिस जिन को अहार,
चार को सो अंक लंक चन्द सरमाती है ।
ऐसी अरिनारी सिवराज बीर तेरे त्रास,
पायन मे छाले परे, कन्दमूल खाती है ।।
ग्रीषम तपनि ऐसी तपती न सुनी कान,
कज कैसी कली बिन पानी मुरझाती है ।

तोरि तोरि आछे से पिछौरा सो निचोरि मुख
कहैं सब कहाँ पानी मुकतों मैं पाती है ॥५॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हजारिन के नियरे ।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे ।
'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे ।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौ रंग सिपाह मुख पियरे ॥६॥

राना भो चमेली और बेला सब राजा भये,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है ।
सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर,
भ्रमत भ्रमर जैसे फूल की समाज है ॥
'भूषन' भनत शिवराज वीर तैहीं देस-
देसन मैं राखी सब दच्छिन को लाज है ।
त्यागे सदा पटपद-पद अनुमान यह,
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥७॥

केतिक देस दल्यो दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो ।
रूप गुमान हर्‌यो गुजरात को, सूरत को रस चूसि कै नाख्यो ॥
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो ।
सो रंग है सिवराज बली, जिन नौ रंग में रंग एक न राख्यो ॥८॥

जोर करि जैहैं जुमिला हू के नरेस पर,
तोरि अरि खंड-खंड सुभट समाज पे ।
'भूषन' असाम रूप बलख बुखारे जैहैं,
चीन सिलहट तरि जलधि जहाज पै ॥

सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ,
कहैं नवरंगजेब साहि सिरताज पैं ।
भीख माँगि खैहैं बिन मनसब रैहैं,
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पैं ॥९॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को ।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥
'भूषन' अखंड नवखंड महिमंडल मैं'
तम पर दावा रबि-किरन समाज को ।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौ,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥१०॥

'सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों,
कहत बार बार कहि पातसाह गरजा ।
सुनिये खुमान हरि तुरुक गुमान महि,
देवन जेंवायो कवि 'भूषन' यों अरजा ॥
तुम वाको पायकै जरूर रन छोरो वह,
रावरे वजीर छोरि देत करि परजा ।
मालुम तिहारो होत याहि मैं निबेरो रन,
कायर सो कायर और सरजा सो सरजा' ॥११॥

चकित चकत्ता चौकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है ।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिन की नारी फरकति है ॥
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है ।
राज सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है ॥१२॥

स्फुट

साहितनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुबारी सुर की सभा को निदरति है।
'भूषन' भनत जहाँ एक एक सिखर ते
केते धौ नदी नद की रेल उतरति है॥
जोन्ह को हँसति जोति हीरामनि मंदिरन
कन्दरन में छबि कुहू की उछरति है।
एतो ऊँचो दुरग महाबली को जामें नख-
तावली सो सहस दिपावली करति है॥१॥

मिलितहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों,
सरजा सुरेस ज्यो दुचित ब्रजराज को।
भूषन, कुमिस गैर मिसिल खरे किये को,
किये म्लेच्छ मुरछित करिकै गराज को॥
अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय महाराज सिवराज को।
दावदार निरखि रिसानों दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को॥२॥

चंदन मे नाग, मद भर्‌यो इंद्रनाग,
विष भरो सेस नाग, कहै उपमा अबस को।
भोर ठहरात न, कपूर बहरात, मेघ,
सरद उड़ात बात लाके दिसि दस को॥
शंभु नीलग्रीव, भौर पुंडरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सन भूषन सरस को?
छीरधि मैं पंक, कलानिधि मैं कलंक याते,
रूप एक टंक ए लहैं न तव जस को॥३॥

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।

भौंसिल भुवाल ! तेरो जस हिमकर सो है,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो ।।
भूषन भनत तेरो हियो रत्नाकर सो,
रत्नाकरौ है तेरो हिए सुखकर सो ।
साहि के सपूत सिव साहि दानि ! तेरो कर,
सुरतरु सो है, सुरतरु तेरो कर सो ।।४।।

एक कहै कलपद्रुम है इमि पूरत है सब की चित चाहै ।
एक कहैं अवतार मनोज को यों तन मैं अति सुन्दरता है ।
'भूषन' एक कहैं महि इंदु यों राज बिराजत बाढ्यो महा है ।
एक कहैं नरसिंह है संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है ।।५।।

तेरे ही भुजन पर भूतल को भार,
कहिबे को सेसनाग दिगनाग हिमाचल है ।
तेरो अवतार जग पोसन भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है ।।
साहिन में सरजा समत्थ सिवराज, कवि,
भूषन कहत जीबो तेरोई सफल है ।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल, बिन,
काज होत काल बदनाम धरातल है ।।६।।

कीरति को ताजी करी बाजि चढ़ि लूटि कीन्ही,
भई सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की ।
भूषन भनत, भौसिला भुवाल धाक ही सों,
धीर धरबी न फौज कुतुब के धुर की ।
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
मान बिन कीन्हीं साहबी त्यों दिलीसुर की ।
साहिसुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी ।।७।।

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके,
भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है ।

भूषन भनत कुल-सूर कुल-भूषन हैं,
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है ।।
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बानर हैं,
सिंधु रहै बाँधे जाके दल को न पारु है ।
तेगहि कै भेंटै जौन राकस मरद जानै,
सरजा शिवाजी राम ही को अवतारु है ।।८।।

कौन करै बस वस्तु कौन इहि लोक बड़ो अति ?
को साहस को सिंधु कौन रज-लाज धरे मति ।।
को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि ?
अष्टसिद्धि नव-निद्धि देत, माँगे को सो कहि ।।
जग बूझत उत्तर देत इमि, कवि, भूषन, कवि-कुल-सचिव ।
'दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिनंद मकरंद सिव' ।।९।।

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो ।
भूषन भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो ।।
चंदकर किंजलक चाँदनी पराग, उड़
वृन्द मकरन्द बुन्द पुंज के सरीर सो ।
कंद सम कयलास नाक-गंग नाल तेरे
जस पुण्डरीक को अकास चंचरीक सो ।।१०।।

देव

अध्यात्म-चिंतन

श्री विधि बानी जु बेद बखानी, पुराननि जो सिव संग भवानी।
जो कमला कमलापति के सग, देव, सचीस सची सुखदानी ॥
दीपसिखा वृज मंदिर सुन्दरि, जागति ज्योति चहूँ जुग जानी।
सिद्धि की साधिका साधु समाधिका, सो बृजराज की राधिका रानी ॥१ ॥

पाँयनि नूपर मजु बजै, कटि-किंकिन मे धुनि की मधुराई।
साँवरे अग लसै पट-पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई ॥
माथे किरीट, बड़ें द्रिग चचल, मद हसी मुख-चंद-जुन्हाई।
जै जग-मंदिर दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह 'देव' सहाई ॥२॥

एक होत इन्द्र, एक सूरज औ चंन्द्र, एक,
होत है कुबेर कछु बेर देत नाया के।
अकुल कुलीन होत, पाँमर प्रवीन होत,
दीन होत चक्कवै चलत छत्र छाया के।
सपति-समृद्धि, सिद्ध, निद्धि, बुद्धि-वृद्धि सब,
भक्ति-मुक्ति पौरि पर परी प्रभु जाया के।
एक ही कृपा-कटाछ कोटि यच्छ रच्छ नर,
पाँवै घरबार दरबार देव माया के ॥ ३ ॥

कथा मै न, कंथा मैं न, तीरथ के पथा मै न,
पोथी मैं न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं।
जटा मै न, मुडन न, तिलक त्रिपुडन न
नदी कूप-कुंडन अन्हान दान-रीति मै।
पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल न,
माला-दंड मैं न देव देहरे की भीति मै।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं ॥ ४ ॥

बटु ह्वै नटु ह्वै कै रिझावै जिन्हे हरि 'देव' करै बतियाँ तुतरी ।
बिधि-ईस के सीस बसी बहु बारन, कोटि कला रस-सिधु तरी ॥
जगमोहिनि राधे ! तू पाइ परौ वृषभान के भौन अबै उतरी ।
गुन बाधे नचावति तीनहुँ लोक लिये कर ज्यों कर की पुतरी ॥५॥

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौ ।
कैसो परलोक, नरलोक बर लोकन में
लीन्हों मै अलीक लोक-लीकन ते न्यारी हौ ।
तन जाहि, मन जाहि, 'देव' गुरुजन जाहि,
जीव किन जाहि टेक टरति न टारी हौ ।
वृंदाबनवारी बनवारी की मुकुट वारी,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौ । ६

मोही मै छिपे हौ मोहि छ्वावत न छाँहौ तातै,
छाहँ भए डोलत इतै पै मोहि छरिहौ ।
मच्छ सुनि कच्छप बराह नरसिंह सुनि,
बावन परसुराम रावन के अरि हौ ।
देव बलदेव देव दानव न पावै भेव,
को हौ जू कहौ जू जौ हिये की पीर हरिहौ ।
कहत पुकारे प्रभु करुना-निधान कान्ह,
कान मूँदि बौ ह्वै कलंकी काहि करिहौ ।।

बिहार एवं ऋतुवर्णन

सुनि कै धुनि चातक-मोरनि की,
चहुँ ओरनि कोकिल-कूकनि सों ।
अनुराग-भरे हरि बागनि में,
सखि ! रागत राग अचूकनि सों ।।
कवि 'देव' घटा जु नयी उनयी,
नव भूमि भयी दल दूकनि सो ।

रँग-राती हरी हहराती लता,
झुकि जाती समीर की झूकनि सों ।। १ ।।

स्याम-सरूप घटा ज्यों अनूपम,
नील-पटा तन राधे के झूमैं ।
राधे के अंग के रँग रँग्यो,
पट बीजुरी ज्यों घन-से तन-भू मैं ।।
है प्रतिमूरति दोऊ दुहूँ की,
बिधो प्रतिबिंब वही घट दू मैं ।
एकहि देव दुदेह दुदेहरे,
देव दुधा यक देह दुहू मैं ।। २ ।।

आस-पास पूरन प्रगास के पगार सूझै,
बनन अगार डीठि गली औनि वरते ।
पारावार पारद अपार दस्यौ दिसि बूड़ी,
बिधु ब्रह्मंड उतरात बिधि-बरते ।।
सरद-जुन्हाई जन्हु-जायी धार सहस सु,
धायी सोभा-सिधुनभ सुभ्र गिरि-बरते ।
उमड़ो परतु जोति-मंडल अखंड सुधा,
मंडल मही मे इन्दु-मडल-विवरते ।।३।।

संजोगिन की तू हरै उर-पीर,
बिजोगिन के सँचरै उर पीर ।
कलीन खिलाइ करै मधु-पान,
गलीन भरै मधुपान की भीर ।।
नचै मिलि बेलि-बधूनि अचै रसु,
'देव' नचावति आधि अधीर ।
तिहूँ गुन देखियै दोख-भरो,
अरे सीतल मंद सुगंध समीर ।। ४ ।।

डार द्रुम पालन, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झगूला सोहै तन छवि भारी दे ।

पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दे ।।
पूरित पराग सों उतारो करै राई-नोन,
कंज-कली नायिका, लतानि पुचकारी दे ।
मदन-महीप जू को बालक बसंत, ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी ।। ६।।

उद्धव-प्रसंग

ऊधौ आये, ऊधौ आये, स्याम को सदेसो लाये,
सुनि गोप-गोप धाये, धीर न धरत है ।
पौरी लगि दौरी उठि, भौरी लौ भ्रमति मति,
गनति न काहू, गुरु लोग न डरत है ।
ह्वै गयी बिकल बाल बालम बियोग भरी,
जोग की सुनत बात गात यों जरत है ।
भारी भये भूखन, सँभारे न परत अग
आगे को धरत पग पाछे को परत है ।।। १ ।।

को हमको तुम-से तपसी बिनु, जोग सिखावन आइ है ऊधो !
पै अब एही कहो, उनको पिछली सुधि आवति है कबहूँ धो ।।
एक भली भयी, भूप भये, जिन्है भूलि गये दधि माखन दूधौ ।
कूबरि-सी अति सूधी बधू बरु पायो भलो घन स्याम-सो सूधो ।।२।।

जो न जी मे प्रेम तब कीजै ब्रत-नेभ, जब
कज-मुख भूलौ तब संजमु बिसेखियै ।
आस नही पी की तब आसनही बाँधियत,
सासन कै सासन को मूदि पति पेखिपै ।
नख ते सिखा लो सब स्याममयी बाम भयी,
बाहर लौ भीतर न दूजौ 'देव' देखियै
जोग करि मिलै, जो वियोग होय बालम, जु,
ह्या न हरि होयँ तब ध्यान धरि देखिये ।।३।।

जोगहि सिखैहैं ऊधो जो गहि के हाथ हम,
सो न मन हाथ, व्रज-नाथ साथ कै चुकी ।।
'देव' पंच-सायक नचाय खेलीं पंचन में,
पंच हू करनि पंचामृत सो अचै चुकी ।।
कुलबधू ह्वै कै हाय ! कुलटा कहायीं, अरु
गोकुल में कुल में कलंक सिर लै चुकी ।।
चित होत हित, न हमारे नित ओर सो तो
वाहि चित चोरहि चितौत चित दै चुकीं ।।४।।

रावरो रूप रह्यो भरि नैनन, बैननि के रस सों स्रुति सनौ ।
गात मैं देखत गात तुम्हारेई, बात तुम्हारिये बात बखानो ।।
ऊधो हहा हरि सो कहियो, तुम हौ न इहाँ यह हौं नहिं मानो ।
या तन से बिछुरे तो कहा, मन ते अनते जु बसौ तब जानो ।। ५ ।।

कुबिजा कितेब जा के रहे आपु "देव",
अंस अवतारी अब तारी जिन गनिका ।
आरति न राखत निवारत नरक ही ते,
तारत तिलोक चरनोदक की कनिका ।।
उनके गुनानुवाद तुमसों सुने है ऊधो,
गोपिन को सूधो मत प्रेम की जवनिका ।
कुंजन मैं टेरिहै जु स्याम को सुमिरि नीके,
हाथ लै न फेरिहै सुमिरिनी के मनिका ।।६ ।।

अंजन सों रंजित निरंजनहि चानै कहा,
फीको लगै फूल रस चाखे हौ जु बौड़ी को ।
तूरज बजाय सूर सूरज को बेधि जाय,
ताहि कहा सबद सुनावत सो डोड़ी को ।।
ऊधो पूरे पारखी हौ परखे बनाय "देव",
बार ही पै बोरौ पैरवैया धार औड़ी को ।
मनु मनिका दै हरि हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
तिन्हैं तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को ।।७।।

विरह-वर्णन

बरुनी बघंबर औ गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहैं भेख रखियां।
बूड़ी जल ही में दिन-जामिनी रहति, भौंहें,
धूम सिर छायो, बिरहानल बिलखियां॥
आँसू ज्यों फटिक-माल, लाल डोरे सेल्ही सजि,
भयी है अकेली तजि चेली संग-सखियां।
दीजिये दरस 'देव' लीजिये संयोगिनि कै,
जोगिनि ह्वै बैठी वा बिजोगिनि की अँखियाँ॥१

कैधौं हमारियै बार बड़ो भयो,
कै रबि को रथ ठौर ठयो है।
भोर ते भान की ओर चितौति,
घरी-पल हू गनतै न गयो है॥
आवत छोर नही छिन को,
दिन को नहिं तीसरो जाम छयो है।
पाइयै कैसेक साँझ तुरंतहि,
देखु री ! द्यौस दुरंत भयो है॥२

हास-हुलास हिये के लिये, सु
निरास उसास हमें दिये दोये।
'देव' लुन्यो सुख-रूखन को बन
या मन में बिष-बीजन बोये॥
प्यास निगोड़ी रही गड़ि नैनन,
उज्जल सो निचुरे चित कोये।
अपनो जागिबो सौंपि हमैं, अब
नीद हमारीयौ ले सुख सोये॥३

पावस प्रथम प्रिय ऐबै की अवधि सो जो
आवत ही आवै तो बुलाऊँ अति आदरनि

नाहीं तो न हील होन दे री ! झील-झीबरनि,
ग्रीषमहि राखु खाली भाखु खल खादरनि ॥
बीजुरी बरजि, कहु मेघ न गरजि, इन
गाज-मारे मोर-मुख मोरि री ! निरादरनि ।
कंठ रोकि कोकिलनि, चोंच नोचि चातकनि
दूरि करि दादुर, बिदा करि री ! बादरनि ॥४

आयी ऋतु पावस न आये प्रान-प्यारे या तें
मेघनि बरजि, आली ! गरज सुनावै ना ।
दादुरनि कहि, बकि-बकि जनि फोरै कान,
पिकनि हटकि, हठि सबद सुनावै ना ॥
बिरह-बिथा में हौं तो व्याकुल परी हौं, 'देव'
जुगनू चमकि चित चिनगी लगावै ना ॥
चातक न गावैं, मोर सोर न मचावै, घन
घुमड़ि न आवैं, जौ लौं कान्ह घर आवैं ना ॥५

हौं ही हौं और, कि ये सब और, कि
डोलत आजु को औरै समीरौ ॥
या तें इन्है तन-ताप सिरातु, पै
मेरे हिये न थिरातु है धीरौ ॥
ये कहैं कोकिल-कूक भली, मोहिं
कान सुने जम आवत नीरौ ।
लोग ससी को सराहत री ! सब,
तोहू लगै सखि ! साँचेहु सीरौ ?६

रैन सोई दिन, इंदु दिनेस,
जुन्हाई है थाम, घनो बिख घाई ।
फूलन-सेज सुगंध दुकूलन
सूल उठै तन, तूल ज्यों तायी ॥
बाहर भीतर भ्वैहरेऊ न
रह्यो परै, 'देव' सु पूछन आयी ।

हौं ही भुलानी, कि भूले सबै,
कहैं ग्रीखम सों सरदागम माई ।।७

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक से,
तीर-ऐसे त्रिबिध समीर लागे लहकन ।
सान-धरे सार-से चंदन घनसार लागे,
खेद लागे खरे मृगभेद लागे महकन ।
फाँसी-से फुलेल लागे गाँमी-से गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागे चोवा लागे चहकन ।
अंग-अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन ।।८

आत्मदर्शन

हाय दई यहि काल के ख्याल मे फूल-से फूलि सबै कुम्हिलाने ।
देव अदेव बली बल हीन चले गए मोह की हीस हिलाने ।।
या जग बीच बचै नहि भीचु पै, जे उपजे ते मही मै मिलाने ।
रूप, कुरूप, गुनी, निगुनी, जे जहाँ जनमें, ते तहाँई बिलाने ।। १

को तप कै सुरराज भयो, जमराज को बंधन कौने खुलायो ।
मेरु मही मै सही करिकै गथ ढेरु कुबेर को कौने तुलायो ।
पाप न पुन्य न नर्क न सर्ग मरो सुमरो फिरि कौने बुलायो ।
गूढ़ ही बेद पुरानन बाँचि लबारनि लोग भले भुरकायो ।। २

जाके न काम न क्रोध बिरोध न लोभ छुवै नहि छोभ को छाहौ ।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहौं ।।
बानी पुनीत ज्यौं देव धुनी रस आरद सारद के गन गाहौं ।
सील ससी, सबिता छबिता, कविताहि रचे, कबि ताहि सराहौं ।। ३

बाग्यो बन्यो जरतार को तामहि ओस को हार तन्यो मकरी ने ।
पानी मैं पाहन पोत चल्यो चढ़ि, कागद की छतुरी सिर दीने ।

काँख में बाँधिकै पाँख पतंग के देव सुसंग पतंग को लीने।
भोम के मंदिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने ।। ४

आवत आयु को द्योम अथौत, गए रबि धो अँधियारिए ऐहै।
दाम खरे दै खरीदु खरो गुरु, मोह की गोनी न फेरि बिकैहै।
'देव' छितीस की छाप बिना, जमराज जगाती महादुख दैहै।
जात उठी पुर देह की पैठ, अरे बनियें बनियें नहि रेहै ।। ५

काम पर्‌यो दुलही अरु दूलह, चाकर यार ते द्वार ही छूटे,
माया के बाजने बाजि गए, परभात ही भातखवा उठि बूटे।
आतसबाजी गई छिन में छुटि, देखि अजौ उठि के अँखि फूटे,
'देव' दिखैयन दाग बने रहे, बाग बने तो बरोठेई लूटे ।। ६

स्फुट

अनुराग के रगनि रूप तरगनि, अगनि ओप मनो उफनी।
'कवि देव'' हिये सियरानी सबै, सियरानी को देखि सुहाग सनी ।।
बर बागन बाम चढ़ी बरसै, मुसुकानि सुधा घनसार घनी।
सखियानि के आनन इदुन ते, अँखियानि की बदनवार तनी ।। १।।

फूले अनारनि पांडर डारनि, देखत "देव" महा डरु माचै।
माधुरी झौरनि अंब के बौरनि भौरनि के गन मत्र से बाँचै ।।
लागि उड़ै बिरहागिनि की कचनारनि बीच अचानक आँचै।
साँचे हुँकारि पुकारि पिकी कहै नाचे बनैगी बसत की पाँचै ।। २।।

पूतना को पय पान करो मनु, पूत नाते बिसवास बगाहत।
"देव" कहा कहौं मातु पिता हित बन्धुन सो हितु नीके निबाहत ।।
कारे हौ कान्ह निकारे हौ कीलि, रहे गुन लीलि पै औगुन थाहत।
पन्नग की मनि कीन्हें तुम्है, तुम पन्नग की किचुली कियो चाहत ।। ३।।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गनै कुल जाति न बात बह्यो करे।
'देव' नयो हिय नेह लगाय बिदेह कि आँचन देह दह्यो करे।

जीव अजान न जानत जान जो मैन अयान कै ध्यान रह्यो करैं ।
काहे को मेरो कहावत मेरो जुपै मन मेरो न मेरो कह्यो करे ॥ ४॥

साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
तेजु गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ।
'देव' जियै मिलिबे ही कि आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि ।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ॥ ५॥

चित दै चितवौ जित ओर सखी नित नंदकिशोर की ओप ठयी ।
दसहूँ दिसि दूसरो देखति ना, छवि मोहन की छिति माँह छयी ।
कवि 'देव' कहाँ लौ कछू कहियै, प्रतिमूरति हौ उनही की भयी ।
ब्रजवासिन को ब्रज जानि परे न भयो ब्रज री ! ब्रजराजमयी ॥ ६॥

राधे कही है कि ते छमियौ ब्रजनाथ ! जिते अपराध किये मैं ।
कीन्ह तानिन भूलन ना खिन आँखिन रूप अनूप पिये मैं ।
ओछे हिये अपने दिन राति दयानिधि देव बसाय लिये मैं ।
हौ हूँ असाधु, बसी न कहूँ पल आधु तिहारे अगाधु हिये मैं ॥ ७॥

धार मै धाइ धसी निरधार ह्वै, जाय फँसी उकसी न अबेरी ।
गी अँगराइ गिरी गहिरी गहि फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी ।
'देव' कछू अपनो बस ना रसु-लालच लाल चितै भई चेरी ।
बेगही बूड़ि गई पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी ॥ ८॥

राधिका कान्ह को ध्यान करै तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै ।
त्यौ अँसुवा बरसै बरसाने कों पाती लिखै लिखि राधे को ध्यावै ।
'राधे' ह्वै जाय घरीक मै 'देव' सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै ।
आपुने आपुही मै उरझै सुरझै बिरुझै समुझै समुझावै ॥ ९॥

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनौ लोक बूड़ि गए यक संग मैं ।

कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं ।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि,
जंबुरस-बुंद जमुना-जल-तरंग मैं
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग मैं ।। १०।।

पद्माकर

गंगा लहरी

कूरम पै कोल कोल हू पै सेप-कु डली है,
कुडली पै फली फैल सुफन हजार की।
कहै "पदमाकर" त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै भबी है थिति रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर सभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु-जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गगा-धार की॥१॥

जैसे तै न मोसो कहूँ नेक हूँ डरात हुतो,
तैसो अब तोसों हौ हूँ नेक हू न डरिहौ।
कहै "पदमाकर" प्रचड जो परैगो तौ,
उमडि करि तो सों भुजदड ठोंकि लरिहौ॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौ।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं,
गंगा की कछार में पछारि छारि करिहौं॥२॥

बिधि के कमडल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि-पद पकज-प्रताप की लहर है।
कहै "पदमाकर" गिरीस-सीस-मंडल के,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥

भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
जह्नु-जप-जोग-फल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है ॥३॥

लोचन असम अंग भसम चिता को लाइ,
तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो।
कहै "पदमाकर" बिलोकि इमि ढंग जाके,
वेद हूँ पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटाजूट बैठि परबत-कूल माँहि,
महाकालकूट कहौ कैसे कै टँहरतो।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै, ऐसे
पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो ॥४॥

रेनुका की रासन में कीच-कुस-कासन में,
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै "पदमाकर" तहाँई मंजु सूरन में,
धौरी-धौरी धूरन में पूरन प्रभाऊ के।
बारन में पारन मे देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में,
मँझरा मँझारन मे झारन में झाऊ के ॥५॥

प्रबोध

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत, पै
पावत न पार जा अनंत गुनपूरे को।
कहै "पदमाकर" सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन-जाचक जरूरे की।
चंद की छटान-जुत पन्नग-फटान-जुत,
मुकूट बिराजै जटाजूटन के जूरे को।

देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को ॥१॥

या जग जानकी-जीवन को जस क्यो इक आनन गाइ अघैये ।
त्यों "पदमाकर" मारग है बहु, द्वै पद पाई कितै-कितै जैये ।
नाम अनंत अनत कहे, ते कहे न परै करि काहि जतैये ।
राम की रूरी कथा सुनिये को करोरन कान कहो कहाँ पैये ॥२॥

द्योस को रात करै जो चहै, अरु रातिहुँ को करि द्यौस दिखावै ।
त्यो "पदमाकर" सीलको सिंधु, पिलीलिका कोबन फील फिरावै ।
यों समरुत्थ तनै दसरत्थ को सोई करै जो कछु मन भावै ।
चाहै सुमेरु को राई करै, रचि राई को चाहै सुमेरु बनावै ॥३॥

आस-बस बास-बस विविधि विलास-बस,
बासना बड़ी को सुर-त्रासन-लौ हरिहौ ।
कहै "पदमाकर" त्यो अधम अजामिल-लौ,
औगुन हमारे गुन मानि हौ तौ धरिहौ ॥
गुह पर गीध पर गनिका गयंद पर,
जाही ढार ढरे तब ताही ढार ढरि हौ ।
ह्वै रहौ तिहारे चरनन ही को चेरो कहूँ,
ऐसो मन मेरो कब मेरे राम करिहौ ॥४॥

मानुष को तन पाय अन्हाय अघाय पियो किन गंग को पानी ।
भाषत क्यों न भयो "पदमाकर" राम ही राम रसायन बानी ।
सारंगपानि के पायन सों, तजि कै मन को कत होत गुमानी ।
मोटी मुचंड महामतवारिनि, मूड़ पै मीच फिरै मड़रानी ॥५॥

स्फुट

जाहिरै जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी ।
त्यों 'पद्माकर' हीर के हारिन गंग तरंगन कों सुखदेनी ।

पायन के रंग सों रँगि जाति सी भाँति ही भाँति सरस्वति सेनी।
पैरै जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ-तहाँ ताल मैं होति त्रिबेनी ।।१।।

खेद को भेद न कोऊ कहै ब्रत आँखिन हूँ अँसुवान को धारो।
त्यों 'पद्माकर' देखती हौ तन कौ तन कंप न जात सँभारो।
ह्वै धौ कहा को कहा गयो यो दिन द्वैक ही तें कछु ख्याल हमारो।
कानन मे बसी बाँसुरी की धुनि प्रानन में बस्यो बाँसुरी वारो ।।२।।

पीतम के संग ही उमगि उड़ि जैबे को,
न एती अंग-अगनि परद पखियाँ दई।
कहै 'पद्माकर' जे आरती उतारै चौर ढारै,
श्रम हारै पै न ऐसी सखियाँ दई।
देखि दृग द्वै ही सो न नेक हूँ अघैये,
इन ऐसे झुकाझुक मे झपाक झखियाँ दई।
कीजै कहा राम स्याम-आनन बिलोकिबे कों,
बिरचि बिरचि न अनत अँखियाँ दई ।।३।।

साँझ के सलोने घन सबुज सुरगन सो,
कैसे कै अनग अंग अंगनि सताउतौ।
कहै 'पद्माकर' झकोर झिल्ली सोरन को,
मोरन को महत न कोऊ मन ल्याउतौ।
काहू बिरही की कही मानि लेतौ जो पै दई,
जग मे दई तौ दयासागर कहाउतौ।
पावस बनायो तौ न बिरह बनाउतौ,
जौ बिरह बनायो तौ न पावस बनाउतौ ।।४।।

राधिका सों कहि आई जु तू सखि साँवरे की मृदु मूरति जैसी।
ता छिन ते 'पद्माकर' ताहि सुहात कछू न बिसूरति वैसी।
मानहु नीर भरी घन की घटा आँखिन में रही आनि उनै सी।
ऐसी भई सुनि कान्ह कथा जु बिलोकहिगी तब होइगी कैसी ।।५।।

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हूँ में,
पानन में पिक में पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में दुनी मे देस देसन में,
देखौ दीप दीपन मे दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन मे बगरो बसंत है ॥६॥

औरे भाँति कुंजन में गुंजरत भौर भीर,
और डौर बौरन के ह्वै गये।
कहै 'पद्माकर' सु औरे भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल औरे छवि छ्वै गये।
औरे भाँति बिहंग समाज मे अवाज होति,
ऐसे ऋतुराज के न आन दिन द्वै गये।
औरे रस औरे रीति औरै राग औरै रग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गये ॥७॥

पात बिन कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं।
कहै 'पद्माकर' बिसासी या बसंत के,
सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं।
ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भले
हरि सों, हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज है।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अगारन के पुंज है ॥८॥

फाग के भीर अबीरन में गहि गोबिंद लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी।
छीन पितंमर कंमर ते सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिरि आइयौ खेलन होरी ॥९॥

खेलिये फाग निसंक ह्वै आज मयंकमुखी कहैं भाग हमारो ।
लेहु गुलाल दूहूँ कर मे पिचकारिन रंग हिये मँह मारो ।
भावै तुमैं सो करो मोहि लाल पै पाँय परौं जिन घूँघट टारो ।
वीर की सौ हम देखिहै कैसे अबीर तौ आँखै बचाय कै डारो ।।१०

एकै सग धाये नदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगनि गये जु भरि आनँद मढ़ै नही ।
धोइ-धोइ हारी 'पदमाकर' तिहारी सौह,
अब तौ उपाय एकौ चित्त पै चढ़ै नही ।
कैसी करा, कहाँ जाउं, कासो कहौ, कौन
सुनै, कोऊ तौ निकासौ जासौ दरद बढ़ै नही ।
ए री मेरी बीर जैसे तैसे इन आँखिन तें,
कढ़िगो अबीर पै अहीर तो कढ़ै नही ।।११।।

धारत ही बन्यो ये ही मतो गुरु-लोगन को डर डारत ही बन्यो ।
हारत ही बन्यो हेरि हियो, 'पद्माकर' प्रेम पसारत ही बन्यो ।
वारत ही बन्यो काज सबै, अब यो मुखचन्द उघारत ही बन्यो ।
टारत ही बन्यो घूँघट को पट, नन्दकुमार निहारत ही बन्यो ।।१२।।

कैधौं रूप रासि में सिंगार रस अंकुरित,
कंकुरित कैधौं तम जड़ित जुन्हाई में ।
कहै 'पद्माकर' किधौ यो काम कारीगर,
नुकता दियो है हेम करद सुहाई में ।
कधों अरविन्द में मलिंदसुत सोयो आनि,
कैधो तिल सोहत कपोल की लुनाई में ।
कधों पर्‌यो इंदु में कलिन्दी जल विन्दु कैधौं,
गरक गुंबिद भयो गोरी की गुराई में ।।१३।।

चन्दकला चुनि चूनरी चारु, दई पहिराइ लगाइ सु रोरी ।
बदी बिसाखा रची 'पद्माकर', अंजन आँजि समाज करोरी ।
लागी जबै ललिता पहिरावन, स्याम कौं कंचुकी केसरि-बोरी ।
हेरि हरें मुसिकाइ रहीं, अँचरा मुख दै वृषभान किसोरी ।।१४।।

घर ना सुहात न सुहात बन बाहर हूँ,
बाग न सुहात जे खुसाल खुसबोही सों ।
कहै 'पद्माकर' घनेरे धन धाम त्यों ही,
चन्द न सुहात चाँदनी हूँ जोग जोही सों ।
साँझ ना सुहात ना सुहात दिन माँझ कछू,
व्यापी यह बात सो बखानत हौं तो ही सों ।
राति ना सुहात ना सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों ॥१५॥

घनानन्द

प्रशस्ति

नेही महा ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै ।
जोग-बियोग की रीति मै कोविद, भावना-भेद-स्वरूप को ठानै ।।
चाह के रंग मै भीज्यौ हियो, बिछुरें मिले प्रीतम सांति न मानै ।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित्त बखानै ।।१

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहे इहि भाँति की बात छकी ।
सुनि कै सब के मन लालच दौरैं, पै बौरै लखै सब बुद्धि चकी ।।
जग की कबिताई के धोखे रहै, ह्यौं प्रबीनन की मति जाति जकी ।
समझै कबिता घनआनन्द की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ।।२

स्फुट

हीन भएं जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै ।।
प्रीति की रीति सु क्यौं समझै जड़, जो तन के पानि परे को प्रमानै ।
या मन की जु दसा घन आनंद जीवनि जान ही जानै ।।३

पहले अपनाय सुजान सनेह सो क्यों फिरि नेह को तोरियै जू ।
घन आनंद आपने चातिक को गुन-बाँधिकै मोह न छोरियै जू ।।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यों बिष घोरियै जू ।।४

भोर ते साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सो इकतार न टारति ।।
जो कहूँ भावतो दीठि परै घन आनन्द आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सोहन जोहन ही लगियै रहै आँखिन के उर आरति ।।५

बावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूं नहिं आन तिहारियै ।।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै ।
रोकी रहै न, दहै घन आनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ।।६

आसहि अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै ।
निपट कठोर ए हो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सो दुहेली दसा को कहै ।।
अचिरजमई मोहिं भई घन आनंद यौ,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर,
नेह-नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौ उड़्यौ रहै ।।७

घनआनंद जीवन मूल सुजान की कौधन हूँ न कहूँ दरसै ।
सु न जानियै धौ कित छाय रहे इत चातक-प्रान तपे तरसै ।।
बिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यौं करि भो अब सो परसै ।
बदरा बरसै रितु मै घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसै ।।८

अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौ कि अभागिन भीरौ ।
आगि जरौ अकि पानी परौ अब कैसी करौ हिय का बिधि धीरौ ।।
जौ घनआनद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौ ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हे, धरती मै धँसौ कि अकासहि चीरौ ।।९

प्रान-पखेरू परे तरफै लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन ।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-बियोग के हाथन ।।
सालत बान समान हियै सु लहे घनआनद जो सुख साथन ।
देहु दिखाय दई मुखचद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ।।१०

रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर भवासी ।
नैन मिलें उर के पुर पैठतै लाज लुटी न छुटी तिनका सी ।।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनंद बाँधि लिये कुल-नेम गढ़ासी ।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी ।।११

लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं ।
लाड़ली आवनि लालसा लागि न लागत है मन मैं पन धारैं ।।

या रस भीजे रहै घनआनद, रीझे सुजान सुरूप तिहारै ।
चायनि बावरे नैन कबै अंसुवान सो रावरे पाँय पखारै ॥१२

सोभा को निकेत नेत भाखत निगम जाहि,
ताकै सुख हेत मीनकेत रसखेत है ।
सकल बननि सिर मोर ठौर ठौर जाकी,
राखै चख-ठार और थाकै चित-चेत है ।
राधा-पद-अंकित बिराजि रही महीं महा,
श्रीपति निवास हू ते दीपति उपेत है ।
मधुर बिनोद जहाँ आनन्द-पयोद-झर,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥१३

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरब को,
जग में उदोत देखियत दिन रैन है ।
जाकी जोति जागे रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कबि मित्रन को पोखै मन चैन है ॥
नेह-निधि बाढ्यो घनआनद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारो मन मैं न है ।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सींचैगो स्रवन कहि सुधासन बैन है ॥१४

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि, कैसे उराहनो दीजियै जू ।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू ॥
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू ।
नित नीके रहौ तुम्है चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ॥१५

जेतो घट सोधौ पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौ,
को धौ जीव जारै अटपटी गति दाह की ।
धूम को न धरै, गात सीरो परै ज्यौ ज्यौ बरै,
ढरै नैन नीर बीर ! हरै मति आह की ॥

जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगे अब,
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की ।
जब ते निहारे घनआनद सुजान प्यारे,
तब नैं अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥१६

अधिकौ सुधि लेत, सुन्यौ, हति कै गति रावरी क्यौं हूँ न बूझि परै ।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै ॥
घनआनद यौं अपराध तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै ।
दिन रैन सुजान-वियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥१७

अक भरौ, चकि चौंकि परौ, कबहुँक लरौ, छिन ही मै मनाऊँ ।
देखि रहौ, अनदेखे दहौ, सुख सोच सहौ जो लहौ सुनि पाऊँ ॥
जान ! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समुझै अरु काहि सुनाऊँ ।
सो घनआनद रैनदिना नहि बीतत, जानिये कैसे बिताऊँ ॥१८

मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि ले लै आजिहौ ।
रति-रसना-सवाद-पावड़े पुनीत कारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सो माजिहौ ॥
जान प्रान प्यारे अग-अग-रुचि-रगनि मै,
बोरि सब अगनि अनंग-दुख भाँजिहौ ।
कब घनआनद ढरौही बानि देखै सुख,
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि राँजिहौ ॥१९

घनआनंद मीत सुजान हहा सुनियै बिनती कर जोरि करैं ।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अजू धरि ध्यानहि दूरि तें पाय परैं ॥
मन भायौ बियोग मै जारिबो जौ तौ तिहारी सौ नीकें जरैऊ भरैं ।
पै तुम्है मति कोऊ कहौ हित-हीन, सु या दुख-बीच अमीच मरैं ॥२०

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे ।
देख्यौ न है सपने हू कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे ॥

कैसो संजोग वियोग धौ आहि ! फिरौ घनआनद ह्वै मतवारे ।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक ह आप ते न्यारे ।।२१

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ ।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यौ पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ ।।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ ।
सो घनआनंद जान अजान लौ टूक कियौ परि बाँचि न देख्यौ ।।२२

देखि धौ आरती लै बलि नेकु लगी है गुराई मै कैसी ललाई ।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भेंटन आई ।
फूलत कंज कुमोद लखे घनआनद रूप अनूप निकाई ।
तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सोतिन के हिय होरी लगाई ।।२३

सजनी रजनी-दिन देखे बिना दुख पागि उदग की आगि दहौ ।
अँसुवा हिय पै धिय-धार परै उठि स्वास झरै मुठि आस गहौ ।
घनआनद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौ ।
उर आवत यौ छवि-छाँह ज्यो हौ ब्रजछैल की गैल सदाई रहौ ।।२४

डगमगी डगनि-धरनि छवि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की ।
सुन्दर बदन तर कोरिक मदन वारौ,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की ।
कालिह इहि गली अली निकसे औचक आय,
कहा कहौ अटक भटक तिहि काल की ।
भिजई हौ रोम रोम आनद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ।।२५

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नही ।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ झझकै कपटी जे निसाँक नही ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक ते दूसरो आँक नही ।
तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नही ।। २६

परकाजहिं देह कों धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ ।।२७।।

सावन-आवन हेरि सखी ! मन भावन-आवन-चोप बिसेखी ।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी ।
बूदैं लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी ।
पौन सों जागति आगि सुनी ही पै पानी सों लागति आँखिन देखी ।।२८।।

सोंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को ।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को ।
राग बिराग धमार त्यौ धार सी, लौटि पर्‌यो ढँग यौ सब ही को ।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ।।२९।।

फागुन महीना की कही ना परै बातैं दिन-
रातैं जैसे बीतत सुने तें डफ-घोर कों ।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जात,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कों ।
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सों,
कासों कहौं सहौ हौं बियौग-झकझोर कों ।
मेरो मन आली वा बिसासी घनमाली बिन,
बावरे लों दौरि दौरि परै सब ओर कों ।।३०।।

ब्रज की छबि हेरि हर्‌यो हित होत, खिली मिलि जूथनि जूथ जुही ।
घन घोरि घुरे चहुँ ओरनि ते बरसै परसै सरसै सु फुही ।
तिहि कुंजन मैं रसपुंज-भरे बिहरै हरि-राधिका चोप उही ।
घनआनँद नैन-पपीहन कों नित ही रसरासि रहौ समुही ।।३१।।

नेह सों भोय सँजोय धरी हित-दीप दसा जु भरी अति आरति ।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौहनि आवनि ओर निहारति ।
रावरी आरति बावरी लौ घनआनँद भूलि बियोग निवारति ।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौ हित-मूरति हेरि उतारति ।।३२।।

आसा गन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकाय हौ ।
दीह दुख-दव हिय जारि उर अंतर
निरंतर यौं रोम-रोम त्रासनि तचाइ हौ ।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौ चलाय हौ ।
ऐसे घन आनँद गडी है टेक मन माहिं ।
एरे निरदई तोहि दया उपजाइ हौ ।। ३३ ।।

अंतर आँच उसास तचै अति, अंग उमीजे उदेग की आवस ।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नही थ्यावस ।
नैनउ धारि दिये बरसै घन आनँद छाई अनोखियै पावस ।
जीवनि मूरति जान को आनन है बिन हेरै सदाई अमावस ।।३४।।
तब तो छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे ।
हिय-पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यौं दुख-दोष भरे ।
घन आनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ।।३५।।

द्विजदेव

प्रकीर्ण

कारो नभ कारी निसि कारियो इरारी घटा,
झूकन बहुत पौन आनन्द को कन्द री।
'द्विजदेव' सांवरी सलोनी सजी स्याम जू पै,
कीन्हे अभिसार लखि पावस अनद री।
नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर,
जागे संग सोहत सहायक अमद री।
बाहन मनोरथ उमाहै सगवारी सखी,
मैनमद सुभट, मसाल सुखनद री ॥१॥

घूमि कै चहूंघा धाय आवे जलधर-धार,
तड़ित पताके बाँके नभ मे पसरिगे।
'द्विजदेव' कालिन्दी समीपन के सीपन के,
पात-पात जोगिनी जमातन ते भरिगे।
चातक चकोर मोर दादुर सुभट जोर,
निज-निज दाँव ठाँव ठाँवन सँभरिगे।
बिन यदुराय अब कीजै कहा माय,
हाय पावस महीप के चहूँघा घेरे परिगे ॥२॥

उमड़ि-घुमड़ि घन छाँड़त अखंड धार,
अति ही प्रचंड पौन झूकन बहुत है।
'द्विजदेव' साध्या को कोलाहल चहूँघा नभ,
शैल ते जलाहल को जोग उमहत है।
बुद्धि बल थाको सोई प्रबल निसा को मेघ,
देखि ब्रज सूनो बैर आपनो गहतु है।
एहो गिरधारी राखो सरन तिहारी,
अब फेरि यहि बारी ब्रज बूड़न चहतु है ॥३॥

आवत चली ही यह विषम बयारि देखु,
दबे-दबे पायन किवारन लरजि दै ।
कवैलिया कलंकिनी को दौरि समझाय,
मधुमाती मधुमालिन कुचालिन तरजि दै ।
आज ब्रजरानी के वियोग को दिवस ताते,
हरे-हरे कीर बकवादिन हरजि दै ।
पी-पी कै पुकारिबे को खोलै ज्यो न जीहन,
त्यौ बावरी पपीहन के जूहन बरजि दै ।।४।।

भूले भले भोर बन भाँवरै भरैगे चहूँ,
फूलि फूलि किंसुक जको सो रहि जाय है ।
'द्विजदेव' की सौ वह कूजनि बिसासी कूर,
कोकिल कलकी ठौर ठौर पछिताय है ।
आवन बसंत के न ऐहै जो पै स्याम,
तो पै बावरी बलाय सो हमार ह उपाय है ।
पीहै पहिले ही सो हलाहल मँगाय,
या कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय है ।।५।।

अब मति दै री कान कान्ह की बसीठिनि पै,
झूठे झूठे प्रेम के पतौवन को फेरि दे ।
उरझि रही री जो अनेक पुरवातै सोऊ,
नाते की गिरह मूँदि नैनन निबेरि दे ।
मरन चाहत काहू छैल पै छबीली कोऊ,
हाथन उठाय ब्रजबीथिन बरजि दे ।
नह री कहाँ को जरि खेह री भई तो अब,
देहरी उठाय वाकी देहरी पै गेरि दे ।।६।।

बाँके संकहीने, राते कंज छबि छीने, माते,
झुकि-झुकि, झूमि-झूमि काहू को कछू गनै न ।
'द्विजदेव' की सौ ऐसी बनक बनाय बहु–
भाँतिन बगारे चित चाहन चहूँघा चैन ।

पेखि परे प्रात जौ पै गातन उछाह भरे,
बार बार तातें तुम्हैं बूझती कलूक बैन ।
अहो ब्रजराज ! मेरो प्रेमधन लूटिबे को,
बीरा खाय आये कितै आपके अनोखे नैन ॥७॥

सूर ही के भार सूधे सबद गुकीरन के,
मंदिरन त्याग करै अनत कहूँ न गौन ।
'द्विजदेव' त्यौंही मधुभारन अपारन सों,
नेकु झुकि झूमि रहे मोगरे मरून दौन ।
खोलि इन नैननि निहारौ तो निहारौ कहा,
सुखमा अभूत छाय रही प्रति भौन भौन ।
चाँदनी के भारन लगत उनयो सो चंद,
गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन ॥८॥

पाई विभूति घनी तौ हमैं चित चाहि पठाई विभूति उहाँ नै ।
त्यों 'द्विजदेव' जू' कूबरी यों पठई यह कूबरी संगम नातैं ।
ऊधो जू कीजै कहा इतनो सुख यो उपचाय हिये बहु घातैं ।
जाहिर है सिगरे ब्रज पै उन मेरे सनेह की बातैं ॥ ९ ॥

घहरि घहरि घन सघन सहूँधा घेरि,
छहरि छहरि बिरह-बूँद बरसावै ना ।
'द्विजदेव' की सौ अब चूक मत दाव, एरे
पातकी पपीहा ! तू पिया को धुनि गावै ना ।
फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ, एरे,
मटकि मटकि मोर मोर तू मचावै ना ।
है तो बिन प्रान, चाहत तजोई अब,
कत नभ चन्द तू अकास चढि धावै ना ॥१०॥

आजु सुभायन ही गयी बाग, बिलोकि प्रसून की पाँति रही पगि ।
ताहि समै तँह आये गोपाल तिन्हे लखि औरौ गयो हियरो ठगि ।
पै 'द्विजदेव' न जानि पर्‌यो धौं कहा तहि काल, परे अंसुवा जगि ।
तू जो कही, सखि ! लीनो सरूप सो मो अँखियान कौ लोनी,गयी लगि ॥११॥

आधी लै उसास मुख आँसुन से धोवै कहूँ,
कहूँ जोवै आधे आधे पलन पसारि कै।
नींद भूख प्यास ताहि आधी हूँ रही न तन,
आधे हूँ न आखर मकत अनुसारि कै॥
'द्विजदेव' की सौ आधि अधिकानी जामौं,
नेकहु न चैन मन राखत सँभारि कै।
जा दिन ते जोरि मनमोहन लला पै दीठि,
राधे आधे नैनन ते आई तू निहारि कै॥१२॥

औरै भाँति कोकिल चकोर ठौर ठौर बोलैं,
औरै भाँति सबद पपीहन के ह्वै गये।
औरै भाँति पल्लव लिये वृन्द तरु,
औरै छवि पुंज कुंज कुजन उनै गये।
औरै भाँति सीतल सुगन्ध मंद डोलै पौन,
'द्विजदेव' देखत न ऐसे फल ह्वै गये।
औरै रीति औरै रंग औरै साज औरै संग,
औरे बन औरै छन औरै मन ह्वै गये॥ १३॥

चित चाहि अबूझ कहैं कितने छवि छीनी गयंदन की टटकी।
कवि केते कहै निज बुद्धि उदै, यहि सीखी मरालन की मटकी।
'द्विजदेव जू' ऐसे कुतरकन मैं, मग की मति यों ही फिरै भटकी।
वह मद चलै किन भोरी भटू पग लाखन की अखियाँ अटकी॥१४॥

देखि मधुमास की रुतीथ अनरीति,
मधुसूदन जु होते तौ न औते कहौ काहे कौ।
जानि ब्रज बूड़त जु होते गिरिधारी तौ पै,
ऊधौ इत तुमहि पठौते कहौ काहे कौ।
'द्विजदेव' प्यारे पिय पीतम जु होते तौ पै,
ब्रज में बढ़ौते दुःख सोते कहौ काहे कौ।
बसि कै बिदेस बीजुरी-सी ब्रजबालनि कौ,
होते घनस्याम तौ बरौते कहौ काहे कौ॥ १५॥

मेल्यो उर आनँद अपार मैन सोवत ही,
पाय सुधि सौरभ समीरन मिलन की ।
नेह के झकोरनि हिलाय उर दीन्हों लखि,
सुखमा लवंग लतिकान के हिलन की ।
स्वपन भयो धौं कैधौं साँची करतार इमि,
समुझत रीति लखि अंग शिथिलन की ।
खिल गये लोचन हमारे एक बार सुनि,
आहट गुलाबन के अखिल खिलन की ।।१६।।

दाबि दाबि दतन अधर छतवंत करैं,
आपने ही पाँयन को आहट सुनत स्रौन ।
'द्विजदेव' लेत भरि गातन प्रस्वेद अलि,
पात हूँ की खरक जु होति कहूँ काहू भौन ।
कंटकित होति अति उससि उसासनि ते,
सहज सुबासन शरीर में जु लागे पौन ।
पंथ ही में कंत के जो होति यह हाल तोपै,
लाल की मिलनि ह्वैहै बाल की दसा धौ कौन ।।१७।।

आई न जो बक बावरे पै 'द्विजदेव' जू हसन की तौ गई गति ।
मेढक मीनन मान कर्‌यो तो भई है कहा अरबिन्दन की छति ।
उक्ति उदार कविन्दन पै बन बासिन की सुभई न भई रति ।
जा पै गँवारन लीन्हों न तो घटि जाती जवाहिर की कहूँ कीमति ।।१८।।

मंजु मंजु गुंजत मलिंदन की प्यारी धुनि,
सुनत सलोनी सुधि आवति न तन की ।
द्विजदेव' बनक बिलोके ही बनत कछु,
ललित लवंग लतिकान के सुमन की ।
सीरो धीर सुरभि समीर सरसात बन,
लखि रुकि जाति गति काके ना चखन की ।
ऊधो जू न आवै लाज हिय में तिहारे आज,
आए हूँ बसंत सीख देत उजरन की।।१९।।

साँझ ही ते आवत हिलावत कटारी कर,
पाइकै कुसंगति कृशानु दुखदाई को ।
निपट निशंक ह्वै त जी तै कुल कानि खानि,
औगुण कीने कहूँ तुलै न बाप भाई को ।
येरे मति मंद चंद आवत न लाज तोहिं,
देत दुख बापुरे बियोगिनी समुदाई को ।
ह्वै कै सुधा धाम काम विष को बगारै मूढ़,
ह्वै के 'द्विजराज' काज करत कसाई को॥२०॥

लै लै कर झोरी जुरि आईं इतै गोरी उतै,
होरी खेलिबे को ग्वाल बाल हूँ बनायो कीच ।
छायगो छिनै में यों गुलाल मेघमाल ऐसो,
'द्विजदेव' जासों न जनायो परै ऊँच-नीच ।
ऐसी भई धूँधरि धमारि की जु ताही समै,
पावस के भोरे मोर शोर कै उठे अपीच ।
घन के समान ज्यों-ज्यों दौरै घनश्याम त्यों-त्यों,
संपा सी दुरति आली चम्पा बन बीच बीच ॥२१॥

मंद गंध बाहक सुधा के अवगाहक की,
अगिनि अवास सी अपूरब भई है गति ।
'द्विजदेव' तेई फूल दुखद भये हैं अब,
जिनहिं बिलोकि हिय होति ही कछू करति ।
अलज अक्रूर की सु ऐसी बिपरीति रीति,
बार बार बावरे बिचारति कहा है अति ।
जाके इत आवत हमारे प्रिय प्रीतम की,
सारे ब्रज मंडल सी लपटि गई है मति ॥२२॥

राती भई भूमि सो तो जावक की छाप,
चूनरी की दाप रँग ऐसो बरसैं अशेष घन ।
साखी पात पातन गुलाल गुंफ से हैं खिले,

हैं जरतारी जिन्हैं जानत अबीर-कन।
'द्विजदेव' ऐसी छबि देखि देखि दौरों कहा,
फागुन के भोरे ब्रजमंडल के सारे जन।
सहज सखीन सँग राधा जू पधार्‌यो आजु,
सावन में सूधे ही सुभावन अशोक बन।। २३।।

गावो किन कोकिल बजावो किन बेनु बेनु,
नाचो किन झूमरि लतागन बने ठने।
फेंकि फेंकि मारौ किन निज कर पल्लव सों,
ललित लवंग फूल पानन घने घने।
फूल माल वारौ किन सौरभ सँवारौ किन,
ये ही परिचारक समीर सुख सों सने।
मौर धरि बैठो किन चतुर रसाल आज,
आवत बसंत ऋतुराज तुम्हैं देखने ।।२४।।

अग अंगरागन सो सोने सों भई है द्युति,
फूले घने पादपन ये हैं पारिजाति बन।
टूटि परे हारन सों रतनमई है भूमि,
ती है घनी जाहि तुम जानत हौ देवी गन।
पीरे परे जातक हा सुनो हो सुमेरु गिरि,
'द्विजदेव' की सों भ्रम नाहक तिहारे मन।
या बिधि सो आजु वृषभानुजा पधार्‌यौ इतै,
शोधन करत सबै गोधन गिरीशतन।।२५।।

बहु भाँति बगारे जो या ब्रज में अति आनन ओप अनूप कला।
'द्विजदेव' जू चन्द्रिका की छवि जाकी प्रसारि रही सिगरी अचला।
निरख्यो जब ते इन नैन चकोरन बीत तज्यों युग एक पला।
चहुँधा सखि चांदनी चौक मे डोलत चंद अमंद सों नंदलला ।। २६ ।।

हाँसी भई सपनों अवाँ सी भई देह यह,
दासी भई बैरिनै विसासी भई सखियाँ ।

'द्विजदेव' त्यों ही कछु फूले-फूले किंशुकन,
ज्वाल-जाल जागी सी चहूँघा दिशि लखियाँ ।
चोप चटवारो चित चंचल चकोर मेरो,
कैसी करै बावरी परिद बिन पँखियाँ
जा क्षण ते जाय अति उमंगि अघाय मन-
मोहन सों हाय मिलि आईं मेरी अँखियाँ ।।२७।।

कलधौत कपूर कलानिधि कुंद हँसी ही हँसी अति मंद किए ।
मुख बात ते कंज सुगंध सने उपराजित पौनहु चंद किये ।
'द्विजदेव' कटाक्ष ही ते छन जोन्ह के दूरि सबै छल छंद किये ।
पिक चातक मोर चकोरन के यक बात ही ते मुख बंद किये ।।२८।।

है रजनीरज मे रुचि केती कहा रुचि रोचन रंक रसाल में ।
त्यों करहाट में केसर मे 'द्विजदेव' है द्युति त्यों दामिनी जाल में ।
चम्पक में रुचि रञ्चकऊ नहिं केतकि है रुचि केतकि माल में ।
तीतन को तन को लखिये तौ कहा द्युति कुंदन चन्द मशाल में ।।२९।।

भाव-वर्णन

जानैं तबै परिहास जबै जब श्याम विदेश की बातन भाषैं ।
सो उन साँचो करौ 'द्विजदेव' पुरै दुख हा इनिकी अभिलाषैं ।
फूली घनी विष बेली इतै उत का बिधि ये अँखियाँ अब चाषैं ।
दैहरी साँधि चलै वै लला कहौ कौन प्रकार सों देहरी राषैं । ३० ।।

लैबे को चली ती बहु भाँतिन को चैन बन,
ऊँची कै भुजान भरि अंचल छिपाई लाज ।
छीबो को चली ती वह पानिप भरोई तन ,
छाय छाय आई हियो पावक वियोग साज ।
भभरि रही सी अभिलाषा मन ही की मन,
'द्विजदेव' की सौ कछु भूलिहू भयो न काज ।
पीबे को चली ती ब्रजचंद्र को अमंद हास,
पाय चली प्यारी विष विरह विथा को आज।।३१।।

परम परब पाइ न्हाइ जमुना के नीर,
पूरिकै प्रबाह अंगराग के अगरते ।
'द्विजदेव' की सों द्विजराज अंजली के काज,
जौं लौं चहे पानिय उठायो कंज करते ।
तौं लौ बन जाइ मन मोहन मिलापी कहूँ,
फूकसी चलाई फूँकि बाँसुरी अधरते ।
श्वासा काढ़ि नासा ते न बासाते भुजाएँ कढ़ीं,
अंजलीन अंजली ते आखरो न गरते ।।३२।।

धीर धरै न मलैज मलै तन ताप दुरै न पुरौनि से पातन ।
त्यों 'द्विजदेव' कपूर की धूरन जाति न वाकी विथा जलजातन ।
ऐसिय श्याम सुनी कुशलात हौं छज्जन छाजन छातन छातन ।
बूढ़िन की अरु बारिन की ब्रज की युवतीन की बातन बातन ।।३३।।

भेद मुकुता के जेते स्वाति ही में होत ते तै,
रतन हूँ को कहूँ भूलि हूँ न होत भ्रम ।
मोती सो न रतन रतन हूँ न मोती होत,
एक के भये ते कहूँ होत दूसरे को भ्रम ।
'द्विजदेव' की सों ऐसी बनक निकाई देखि,
राम की दोहाई मन होत है निहाल मम ।
कंज के उदर प्रगट्यो है मुकुताहल सो,
बाहर के आवत भयो है इन्द्रनील सम ।।३४।।

ज्यों-ज्यों तुम गाइ गहि गुनन बिकासो बन,
ह्वै ह्वै अध उरध झलान के झकोरे में ।
त्यों-त्यों सुख पाइ तुब गुनन गहीली बास,
होती अध उरध न केती चितचोरे में ।
'द्विजदेव' याही विधि झूलती किती की मति,
जाहि अवलोकि हिय हरष हिलोरे में ।
कैसी यह झूलन तिहारी है तिहारी सौंह,
ये हो ब्रजराज आज रंग के हिंडोरे में ।।३५।।

आज बरसाने की नवेली अलबेली बनि
पावन चरित्र बलि बावन तयारी मे।
लै लै कर लेखनी लगावन लगीही रंग,
आनंद उमगते सबीह न्यारी न्यारी में।
ताही समय बाँसुरी सुनाई कहूँ कान्है टेरि,
'द्विजदेव' की सों यः अनंद अधिकारी में।
चित्र लिखिबे की कौन चरचा चलावै जब,
चित्र की लिखी सी भई सारी चित्रसारी में ।।३६।।

खोइ के सुबश बसी ऐसी ही कछूक दिन,
मारी फिरी ऐसे ही कछूक दिन नाँगी री।
छेदक खाइ निज छाती में छ सात गई,
कारीगर हाथन अनेक विधि दागी री।
ताहि मनमोहन कित दिन ते राखी सग,
'द्विजदेव' की सौं ह्वै सुराग अनुरागी री।
ढीठ ह्वै ह्वै क्यों न ब्रज बालन सतावै सोई,
बाँसुरी सुन्यों मैं अब हरि मुख लागी री ।।३७।।

बोलि हारे कोकिल बुलाइ हारे केकी गन,
सिखै हारी सखी सब जुगति नई-नई।
'द्विजदेव' की सों लाज बैरिन कुसंग इन,
अंगन ही आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुंजन ते पलटि पधारे श्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधा मई।
आवन समै में दुख दाइनि भई री आज,
चलन समय में चल पलन दगा दई ।।३८।।

आरसी की उपमा जो हुती सोतो वा मुख की छबि देखतै लाजी।
सोतो सदा बिकसेई रहै कब सारसी ता समता कहूँ छाजी।
ये 'द्विजदेव' कहों किन आजु रहे उपमान जुपै हिय साजी।
तासों लहैगो प्रभा द्विजराज बिराजै जहाँ द्विजराज की राजी ।।३९।।

डारे कहूँ मथनि बिसारे कहूँ घी को भाँड़ो,
बिकल बिगारे कहूँ माखन मठा मही ।
भ्रमि भ्रमि आवत चहूँधा ते जु याही ओर,
प्रेम पयपूर के प्रवाहन मनौ बही ।
झुरसि गई धौ कहूँ काहू की वियोगझार,
बार-बार बिकल बिसूरति जही तही ।
एहो ब्रजराज एक ग्वालिनी कहूँ की आज,
भोर ही ते द्वार पै पुकारति दही दही ।। ४० ।।